अप्रैल-जून वर्ष 29 2023
April-June
अंक : 115
ISSN : 0976-0024

महिला
Mahila

मानव अधिकार विशेषांक – 1

विधि भारती
Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

प्रधान संपादक
सन्तोष खन्ना
संपादक
डॉ. उषा देव
अतिथि संपादक
डॉ. शीतल प्रसाद मीना

ISSN 0976-0024
9 770976 002001

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India
Citation No. MVB-29/2022-2023

विधि भारती परिषद्

बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272, **फ़ोन** : 011-45579335
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com, santoshkhanna25@gmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

'महिला विधि भारती' पत्रिका (पूर्व यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल, क्र. 156, पत्रिका संख्या 48462)

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका

E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com

Website : www.vidhibharatiparishad.in

वर्ष 29, मानव अधिकार विशेषांक – 1, अंक : 115, (अप्रैल-जून, 2023)

प्रधान संपादक : सन्तोष खन्ना, **संपादक :** डॉ. उषा देव

अतिथि संपादक : डॉ. शीतल प्रसाद मीना

बोर्ड ऑफ रेफरीज़ एवं परामर्श मंडल

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. प्रो. (डॉ.) सिद्धनाथ सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
6. डॉ. सुरेंद्र यादव : निदेशक, स्केल विधि महाविद्यालय, अलवर

परिषद् की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
4. रेनू (कोषाध्यक्ष)
5. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
6. डॉ. प्रेमलता (सदस्य)
7. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
9. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)
10. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
11. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
12. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
13. डॉ. उमाकांत ख़ुबालकर (सदस्य)
14. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)

शुल्क दर

वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए

आजीवन शुल्क 5,000/-- रुपए

संस्थागत वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए

संस्थागत आजीवन शुल्क 20,000/-- रुपए

डाक शुल्क अलग

अंक 115 में

1. हमारे लेखक -- 106

2. संपादकीय -- 107

3. मानव अधिकार की परिकल्पना एवं प्रासंगिकता : विशेषकर भारत के संदर्भ में / **डॉ. रेणुवती राजपुरोहित** -- 111

4. मानव अधिकारों की सार्वभौमिक अवधारणा एवं इसकी चुनौतियाँ / **डॉ. दीपक निकुब** -- 117

5. प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में मानव अधिकार / **डॉ. रमेश चंद सैनी** -- 124

6. भारत का संविधान और मानव अधिकार / **प्रोफेसर प्यारेलाल आदिले** -- 131

7. मानव अधिकार और भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993 / **सन्तोष खन्ना** -- 141

8. आधुनिक समाज में मानव अधिकारों का रूपांतरण : कुछ सुझाव / **डॉ. भूमिका शर्मा** -- 149

9. मानव अधिकार एवं समान नागरिक संहिता / **डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल** -- 155

10. भारतीय प्रजातंत्र और पुलिस मानव अधिकारों के दर्पण में / **डॉ. पुष्प लता तनेजा** -- 158

11. दिव्यांगजन एवं मानव अधिकार : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण / **डॉ. चंद्र प्रकाश** -- 166

12. विवाहेतर संबंधों से उत्पन्न बच्चों के मानव अधिकार / **डॉ. अशोक कुमार अवस्थी** -- 176

13. महिला मानव अधिकारों के सबलीकरण में संयुक्त राष्ट्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन / **डॉ. पुष्पांजली पांडेय** -- 180

14. क्या हिंसा हँसता परिणाम दे सकती है? / **आचार्य डॉ. मधु सूदन राजपुरोहित** -- 189

15. जलवायु परिवर्तन : 21वीं सदी में मानव अधिकारों के लिए सबसे बड़ा ख़तरा / **डॉ. शीतल प्रसाद मीना** -- 193

16. संविधान और सामाजिक न्याय एवं मानव अधिकार / **रमेश चंद्र** -- 196

हमारे लेखक

डॉ. रेणुवती राजपुरोहित : सहायक आचार्य, सर प्रताप विधि महाविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)
डॉ. दीपक निकुब : सहायक आचार्य, सर प्रताप विधि महाविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान, भारत,
मोबाइल : 9166178787, **ई-मेल :** deepak.nikub@protonmail.com
डॉ. रमेश चंद सैनी : सहायक आचार्य, (अतिथि प्रवक्ता) हिंदी-विभाग, राजकीय महाविद्यालय, अंता जिला बाराँ (राजस्थान), **संपर्क :** पता/ग्राम/पोस्ट : रजलावता तहसील व उपखंड, मुख्यालय नैनवाँ, जिला बूंदी (राजस्थान)-323801
मोबाइल : 9001166242, **ई-मेल :** rameshsaini11211@mail.com
प्रोफेसर प्यारेलाल आदिले : प्राचार्य एवं प्रमुख (राजनीति विज्ञान विभाग),जे.बी.डी. कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, कटघोरा, छत्तीसगढ़ (भारत)
ई-मेल : pyarelaladile@gmail.com **मोबाइल :** 8120568042
सन्तोष खन्ना : प्रधान संपादक : विधि भारती परिषद
डॉ. भूमिका शर्मा : सहायक प्रोफेसर, शारदा स्कूल ऑफ लॉ, शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश
डॉ. प्रमोद कुमार : 432, सी.पी. मिशन कंपाउंड, सिविल लाइंस, झाँसी-284003
मोबाइल : 9650002565, **ई-मेल :** pk_usha@rediffmail.com
डॉ. पुष्प लता तनेजा : पूर्व निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार एन-9, प्रथम तल, ग्रेटर कैलाश, पार्ट-1, नई दिल्ली-110048
मोबाइल : 9868984894, 9815981702
डॉ. चंद्र प्रकाश : असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, श्री रामसिंह धौनी राजकीय महाविद्यालय, जैंती, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
ई-मेल : cpaagarkoti@gmail.com **मोबाइल :** 9675072977
डॉ. अशोक कुमार अवस्थी : पूर्व डीन विभागाध्यक्ष, लॉ फैकल्टी, लखनऊ विश्वविद्यालय सी-819, इंद्रापुर लखनऊ, पिन-226016, **मोबाइल :** 9415021742
डॉ. पुष्पांजली पांडेय : सहायक प्रध्यापक, खालसा विधि महाविद्यालय जबलपुर म.प्र.
आचार्य डॉ. मधु सूदन राजपुरोहित : प्रोफेसर ऑफ लॉ, सरकारी पी.जी. लॉ कॉलेज, भरतपुर, राजस्थान (भारत) डॉ. बी.आर. अंबेडकर लॉ यूनिवर्सिटी, जयपुर (राजस्थान)।
डॉ. शीतल प्रसाद मीना : एसोसिएट प्रोफेसर, विधि विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
रमेश चंद्र : 1116, ईएसआई अस्पताल के पीछे, गुरुग्राम-122001 **मोबाइल :** 971101134

संपादकीय

इस वर्ष 10 दिसंबर, 2023 को संयुक्त राष्ट्र संघ की विश्व में मानव अधिकारों को पुख्ता आधार प्रदान करने वाली मानव अधिकार सार्वभौम घोषणा को 75 वर्ष हो जाएँगे अर्थात् संयुक्त राष्ट्र संघ मानव अधिकार सार्वभौम घोषणा की हीरक जयंती मना रहा होगा। सबको विदित है कि मानव अधिकारों की यह सार्वभौम घोषणा को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 10 दिसंबर, 1948 को पारित कर उसे लागू किया था। उस समय संयुक्त राष्ट्र संघ में पचास देश उसके सदस्य थे और वर्तमान में इसमें 193 देश शामिल हैं और इन सभी देशों पर मानव अधिकार सार्वभौम घोषणा लागू है। संयुक्त राष्ट्र संघ हर वर्ष 10 दिसंबर को अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार दिवस के रूप में भी मनाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस वर्ष 10 दिंसबर को मानव अधिकार सार्वभौम घोषणा की हीरक जयंती मनाने के लिए जो विशेष विषय रखा है वह है 'सभी के लिए गरिमा, स्वतंत्रता और न्याय।'

द्वितीय विश्व युद्ध में जब बड़े पैमाने पर लाखों लोग मारे गये थे और चारों ओर विनाश के विकराल रुप ने समूची मानवता की आत्मा को हिला कर रख दिया था तो कुछ देशों ने विश्व शांति के लिए एक वैश्विक संस्था बनाने की सोच को साकार रूप देना शुरू किया जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई। कह सकते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना का मुख्य उद्देश्य है युद्ध रोकना, मानव अधिकारों की रक्षा करना, अंतरराष्ट्रीय कानूनी प्रक्रिया, सामाजिक और आर्थिक विकास उभारना, जीवन स्तर सुधारना और बीमारियों की मुक्ति हेतु इलाज। चूँकि संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध के भयंकर परिणाम को ले कर हुई थी तो समझा जाना चाहिए कि क्या यह संस्था भविष्य के युद्ध रोकने के अपने उद्देश्य में सफल हो पाई? इसका सीधा उतर यह है कि नहीं। आठ दशकों के इसके इतिहास को थोड़ा-सा खंगालिये तो आप की आंखों के सामने असलियत स्पष्ट होती चली जाएगी।

इस संदर्भ में सब से पहले भारत की ही बात करते हैं। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के समय से ही इसका सदस्य था परंतु यह संस्था उस काल खंड में भारत की कोई सहायता नहीं कर पाई जब भारत को वर्ष 1947 में अंग्रेजों की गुलामी से स्वाधीनता मिलने के समय उसका दो देशों में विभाजन हो गया। भारत को खंडित कर उसमें से एक नया देश पाकिस्तान बना दिया गया। इस विभाजन के फलस्वरूप बहुत बड़े पैमाने पर दंगे हुए जिसमें

लाखों लोग मारे गये, लाखों लोग अपने बसे बसाए घरों से उजड़े और विस्थापित हो गए। बहुत बड़े पैमाने पर जनसंख्या की अदला-बदली ने ऐसे ऐसे भंयकर मंजर पेश किए कि भारत का विभाजन बीसवीं सदी की बहुत बड़ी त्रासदी साबित हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ बड़े पैमाने पर बनी शरणार्थी जनसंख्या की कोई मदद नहीं कर पाया, बल्कि भारत का यह विभाजन युद्ध की नई युद्ध शृंखला का कारण बना क्योंकि उस समय नव स्वतंत्रता प्राप्त भारत के लिए कश्मीर समस्या उसकी देह, मन और आत्मा का ऐसा नासूर बना दिया गया जो आज तक टीस रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ इस समस्या के संबंध में कुछ भी नहीं कर पाया हालाँकि कश्मीर समस्या का मामला तभी उसके सामने पहुँच गया था। कश्मीर समस्या की वजह से भारत को पाकिस्तान की ओर से पहले वर्ष 1965 में, फिर 1971 में और 1999 में कारगिल युद्ध के रुप में उसकी ओर से युद्ध झेलने पड़े।

यहीं नहीं, नव्य स्वतंत्र भारत अभी तक अपने विभाजन की त्रासदी के दंश झेल ही रहा था कि वर्ष 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण कर उसका सियाचिन के रूप में बहुत बड़ा क्षेत्र हथिया लिया जिसे भारत अभी तक उसके कब्जे से मुक्त नहीं करा सका बल्कि चीन अब भी उसकी सीमाओं पर अपनी वक्र दृष्टि गड़ाए है। कोई नहीं जानता कब चीन भारत पर आक्रमण कर भारत पर एक नया युद्ध थोप दे, युद्ध रोकने में संयुक्त राष्ट्र संघ कुछ भी नहीं कर पाता है जबकि चीन उसका महत्त्वपूर्ण सदस्य हैं और उसे वीटो शक्ति प्राप्त है जिसका वह विश्व कल्याण के लिए प्रयोग न कर उसका दुर्पयोग अधिक करता है और 193-सदस्यी संयुक्त राष्ट्र संघ कुछ भी नहीं कर पाता। उदाहरण के तौर पर, वर्तमान विश्व में आतंकवाद के कारण लोगों के मानव अधिकारों का हनन होता रहता है और जब किसी-न-किसी खूंखार आतंकवादी को ब्लैक लिस्ट करने का कोई प्रस्ताव आता है चीन अपनी वीटो शक्ति का दुरूपयोग कर उस प्रस्ताव को पारित नहीं करने देता है।

विश्व के किसी-न-किसी हिस्सा में युद्ध थोपे जाते रहे हैं। विश्व के अधिकांश युद्ध तो अमरीका जैसी महाशक्ति ने ही थोपे हैं हालाँकि अमरीका ने विश्व शांति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना में मुख्य भूमिका निभाई थी और वह मानव अधिकारों का स्वयं को सबसे बड़ा पक्षधर कहता है। अमरीका वियतनाम, इराक और अफगानिस्तान जैसे देशों को युद्ध के माध्यम से अपना हव्य बनाता रहा है। इराक पर तो उसने ख़तरनाक हथियार रखने का आरोप मढ़ कर उसे युद्ध में तबाह कर दिया था और यहाँ तक कि उसके तत्कालीन राष्ट्रपति सदाम हुसैन को फाँसी पर लटका दिया गया था। अमरीका अफगानिस्तान में बीस वर्ष युद्ध लड़ता रहा और वहाँ समस्या का समाधान निकालने में असफल रहने पर उसने वहाँ से अपने सैन्य बल निकाल लिए और वहाँ की जनता को वहाँ के आततायियों के हाथों तरह तरह के कष्ट सहने के लिए छोड़ दिया गया।

दूसरी तरफ, इस मामले में रूस भी पीछे नहीं रहा है। अमरीका, रूस और चीन, यह तीनों देश संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी वीटों शक्ति के बल पर किसी-न-किसी रूप में दादागिरी

दिखाते ही रहते हैं। पहले तो अमरीका ने युद्ध से नहीं, अपनी खुफिया शक्ति से सोवियत यूनियन जैसी महाशक्ति का ही विघटन कर दिया। वर्ष 1993 में सोवियत रूस के कई टुकड़े हो गए। रूस से अलग हुए देशों को भी अमरीका किसी-न-किसी ढंग से उकसाता रहता है। इस संबंध में सबसे ताजा उदाहरण है रूस-यूक्रेन युद्ध का। फरवरी, 2022 के अंत में रूस ने यूक्रेन पर हमला कर दिया था। तब से रूस-यूक्रेन युद्ध जारी है। वहाँ की जनता शरणार्थी बन कर दूसरे यूरोपीय देशों में शरण लेने को बाध्य हो गई है। रोज़-रोज़ के युद्ध ने यूक्रेन को तबाह कर के रख दिया है और युद्ध समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रहा। वास्तव में अब यह स्पष्ट हो गया है कि यह युद्ध रूस-यूक्रेन का युद्ध नहीं, बल्कि यूक्रेन की ओर से अमेरिका उसके लिए प्रोक्सी युद्ध लड़ रहा है। इस युद्ध में अमरीका अपने शस्त्रों का प्रयोग कर रहा है और भी कई देश यूक्रेन को घातक हथियार देते जा रहे हैं। अमरीका यह युद्ध समाप्त नहीं होने देना चाहता है। जब-जब यूक्रेन के राष्ट्रपति जेलेंसकी ने युद्ध समाप्त करने के लिए रुस से वार्ता की इच्छा जताई, तभी अमेरिका यूक्रेन को सहायता के लिए लाखों बिलियन-ट्रिलियन सहायता का पैकेज देने की पेशकश कर देता है और इतनी बड़ी सहायता पा कर जलेंसकी का मन बदल जाता है और युद्ध चलता रहता है।

इस युद्ध से लगभग सभी देशों को नुकसान हो रहा है और कहा जा रहा है कि अनेक देशों की अर्थव्यवस्था मंदी के कगार पर पहुँच चुकी है, कई देशों में जनता का बहुत बड़ा हिस्सा भुखमरी के कगार पर पहुँच चुका है, इस युद्ध के सामने संयुक्त राष्ट्र संघ अपने आप को बिल्कुल असहाय पा रहा है। अब यह रूस-यूक्रेन युद्ध केवल दो देशों का युद्ध न रह कर विश्व युद्ध की शक्ल लेता जा रहा है क्योंकि यूक्रेन में दूसरे देशों से प्राप्त हथियारों से लड़ा जा रहा है। इस युद्ध के परमाणु युद्ध बन जाने के आसार भी नज़र आ रहे हैं।

जब विश्व के किसी भी हिस्से में लंबे समय से युद्ध लड़ा जा रहा है तो उस युद्ध का दुष्प्रभाव सबसे पहले मानव अधिकारों पर पड़ता है। युद्ध क्षेत्र में रहने वाले लोगों को मानव अधिकार मिलने की बात सोची भी नहीं जा सकती है। बल्कि इस युद्ध का दुष्प्रभाव अन्य देशों पर भी पड़ रहा है जिससे लोगों के मानव अधिकार भी प्रभावित हो रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी स्थापना से ले कर अब तक मानव अधिकार के क्षेत्र में बहुत कार्य किया है। उसने अपनी स्थापना के आरंभ से ही विश्व में मानव अधिकारों की स्थिति का मूल्यांकन के लिए एक समिति का गठन कर दिया था। यह समिति श्रीमती रुजवेल्ट की अध्यक्षता में बनाई गई थी और इसी समिति की रिपोर्ट के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों और मानव स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिये मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा लागू कर दी थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकार आयोग की स्थापना वर्ष 1946-47 में आर्थिक एवं सामाजिक परिषद की एक कार्यात्मक समिति के रूप में की थी, जिसका मुख्य कार्य-प्रतिवेदन तैयार करना, अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय बिल, नागरिक स्वतंत्रता, स्त्री दशा एवं मानव अधिकार संबंधी विषयों पर कार्य करना था। मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में लगभग सभी मानव

अधिकार शामिल कर मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में उन्हें तीस अनुच्छेदों में शामिल कर लिया गया था। बेशक मानव अधिकार सार्वभौम घोषणा सब देशों पर लागू कर दी गई थी फिर भी यह नैतिक सिद्धांत ही थे जिन्हें देश स्वेच्छा से ही मान सकते थे, उन्हें मानने की कोई कानूनी बाध्यता नहीं थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों के चार्टर की घोषणा तो कर दी थी परंतु सदस्य देश इसे लागू करने के लिए बाध्य नहीं थे। इन अधिकारों को कानूनी रूप देने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को लगभग पूरा एक दशक लग गया। बाद में इन अधिकारों को ले कर दो अभिसमय बनाए गए। पहला, नागरिक एव राजनीतिक अधिकार अभिसमय और दूसरा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार अभिसमय। इन दो अभिसमयों की घोषणा वर्ष 1966 में की गई किंतु इन्हें लागू वर्ष 1976 में किया जा सका। भारत ने इन अभिसमयों की संसद में वर्ष 1979 में पुष्टि कर दी थी।

बाद में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने दिसंबर, 1993 में मानव अधिकार गतिविधियों के प्रति उत्तरदायित्व निश्चित करने के लिए मानव अधिकार उच्चायुक्त का पद सृजित किया। मानव अधिकारों को विश्व में और अधिक प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए 15 मार्च, 2006 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने एक नई मानव अधिकार परिषद के गठन का प्रस्ताव पारित किया। इस 47-सदस्यीय मानव अधिकार परिषद ने 53-सदस्यीय मानव अधिकार आयोग का स्थान लिया है। आयोग को 16 जून, 2006 को समाप्त कर दिया गया तथा 19 जून, 2006 को परिषद की प्रथम बैठक आयोजित की गई। उल्लेखनीय है कि नई परिषद स्थायी है तथा प्रत्यक्ष रूप से महासभा के अधीनस्थ है। यह कहीं भी एवं किसी भी देश में मानव अधिकारों के उल्लंघन का गहन विश्लेषण कर सकेगी। इसका कार्य सार्वभौमिकरण, निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता एवं सृजनात्मक अंतरराष्ट्रीय संवाद के सिद्धांतों के अंतर्गत निर्देशित होगा। इसे समय समय पर सभी अभिकरणों एवं निकायों को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी ताकि मानव अधिकार उल्लंघन को व्यवस्थापरक ढंग से रोका जा सके। भारत मानव अधिकार परिषद का सदस्य देश है।

जहाँ तक भारत में मानव अधिकार के क्रियान्वयन का प्रश्न है, यहाँ भारत यथासंभव संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्देशों का अनुसरण करता रहा है। भारत ने यहाँ मानव अधिकारों को और अधिक पुख्ता आधार पर लागू करने के लिए वर्ष 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना कर दी थी। इसे संसद द्वारा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993 बना कर क़ानूनी रूप दे दिया गया। भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग पिछले तीस वर्षों से क्रियाशील है।

अब इस मानव अधिकार विशेषांक के बारे में बात करते हैं। विधि भारती परिषद् की स्थापना वर्ष 1993 में की गई थी और वर्ष 1994 मे 'महिला विधि भारती' त्रैमासिक विधि शोध पत्रिका का शुभारंभ किया गया। तभी से इस शोध पत्रिका के विषयगत विशेषांक निकालने का सिलसिला आरंभ किया गया। विधि भारती पत्रिका का

शेष पृष्ठ 130 पर

डॉ. रेणुवती राजपुरोहित

मानव अधिकार की परिकल्पना एवं प्रासंगिकता : विशेषकर भारत के संदर्भ में

मानव अधिकार ऐसे अधिकार है जो मानव समाज के विकास के लिए आवश्यक है तथा वे प्रत्येक व्यक्ति को केवल इसलिए मिलने चाहिए क्योंकि मनुष्य के लिए अत्यावश्यक है। इन मानव अधिकारों का मूल उद्देश्य व्यक्ति को सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ प्रदान करता है।

सन् 1948 में 48 देशों के समूह (संयुक्त राष्ट्र संघ) ने मानव-जाति के मूलभूत अधिकारों को स्पष्ट करते हुए एक चार्टर पर हस्ताक्षर किए थे। भारत ने भी इस पर सहमति जाहिर करते हस्ताक्षर किए और काफी बाद में जाकर केंद्र सरकार द्वारा इन अधिकारों का संरक्षण और संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित मानव अधिकारों से संबंधित अभिसमयों, प्रसंविदाओं का पालन करने हेतु 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया। परंतु भारत की विशालता और विविधता, विकासशील तथा संप्रभुता संपन्न, धर्मनिरपेक्ष, लोकतात्रिक गणतंत्र में इसकी प्रतिष्ठा तथा लंबी गुलामी के इतिहास की वजह से मानव अधिकारों की परिस्थिति कुछ जटिल हो गई। आज़ादी के इतने वर्षो बाद भी भारत में मानव अधिकार हर पल किसी-न-किसी तरह की प्रताड़ना झेल रहा है और यह जानना जरूरी हो जाता है कि आज़ादी के इतने वर्षो बाद भी वे कौन-कौनसी चुनौतियाँ है जिनके कारण राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग मानव अधिकारों को संरक्षण देने में लाचार दिख रहा है।

मानव अधिकारों के दृढ़ता से प्रभावी नहीं रहने के पीछे सबसे बड़ा कारण राजनैतिक इच्छाशक्ति का नहीं होना है। जैसे कि केंद्र सरकार तथा राज्य सरकारें राज्य मानव अधिकार आयोगों की सिफ़ारिशें मानने को बाध्य नहीं है। अतः आयोग के पास सीमित शक्तियाँ हैं। हालाँकि मानव अधिकार आयोग केंद्र व राज्य सरकारों को सही रास्ते पर चलने और किसी भी हालत में इन अधिकारों का उल्लंघन न हो इसके लिए समय-समय पर दिशानिर्देश जारी करता रहता है।

मुख्य शब्द : मानव अधिकार, परिस्थिति, चुनौतियाँ, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग।

प्रस्तावना

मानव अधिकार का अभिप्राय उन न्यूनतम अधिकारों से है जो सिर्फ मानव होने के

नाते किसी व्यक्ति को मिलने चाहिए। इन मानव अधिकारों के मिलने के साथ ही इनकी पूर्ण सुरक्षा भी होनी चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्ण विकास की ओर अग्रसर हो सके। ये अधिकार मनुष्य के गरिमापूर्ण व सम्मानजनक जीवन जीने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार मानव अधिकार मनुष्य के समग्र विकास के लिए एक अस्त्र है। इक्कीसवीं सदी में एक क्रांतिकारी अवधारणा ये हमारे सामने प्रस्तुत है कि आज आज़ादी के 75वें वर्ष पूर्ण होने पर भी मानव अधिकार से संबंधित बहुत-सी चुनौतियाँ हमारे सामने है।

मानव अधिकारों के लिए भारत एक प्रतिबद्ध राष्ट्र है। भारत के लोगों में शांति और आत्मसम्मान से जीने की लालसा हमेशा से रही है इसलिए प्रजातांत्रिक व्यवस्था को अंगीकार किया। भारत में संविधान निर्माताओं का मानना था कि बुनियादी मानव अधिकारों के बिना व्यक्तियों को प्राप्त स्वतंत्रता बेमानी है। इसी कारण से भारतीय संविधान में मानव अधिकारों को वैधानिक दर्ज़ा दिया गया है और नागरिकों की स्वतंत्रता, समानता एवं अधिकारों की सुरक्षा के लिए कई प्रावधान किए गए हैं इसके पीछे मुख्य कारण यह है कि देश की जनता को समान अवसर उपलब्ध हो जिससे वे अपने जीवन स्तर को उच्चतर बना सके।

मानव अधिकार : इतिहास

मानव अधिकारों का इतिहास बहुत पुराना है। इसका विकास मध्यकाल में 13वीं शताब्दी में एक समझौते से हुआ जो राजा और सामन्तों के मध्य हुआ। यह समझौता 15 जून, 1215 ई. को इंग्लैंड में स्वतंत्रताओं के लिए हुआ जिसे मैग्नाकार्टा कहा जाता है। उसके बाद ब्रिटेन में हुई क्रांति ने मानव अधिकार की अवधारणा को आगे बढ़ाया। इस क्रांति ने 'बिल ऑफ राइट्स' के द्वारा उन स्वतंत्रताओं को मान्यता दी जिनका अब तक हनन होता रहा था। इसके बाद 1776 में अमेरिकी क्रांति तथा 1789 की फ्रांस की क्रांति हुई जिसका मुख्य नारा था स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व। इस नारे ने मानव अधिकारों को विकसित होने के लिए पृष्ठभूमि निभाई।

वर्तमान मानव अधिकार संबंधी धारणा द्वितीय विश्व युद्ध का परिणाम है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जहाँ व्यापक जन-धन की हानि हुई वहीं मानव अधिकारों का व्यापक उल्लंघन हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान घटित अमानवीय घटनाओं की आलोचना करते हुए अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक भाषण के दौरान चार मूलभूत स्वतंत्रताओं का उल्लेख किया जो मनुष्य के लिए अत्यंत आवश्यक है जो भविष्य में मानव अधिकार घोषणा का मुख्य आधार बना। सन् 1946 में मानव अधिकार आयोग द्वारा एक प्रारूप तैयार किया गया जिसको संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा स्वीकृत और घोषित किया गया और इसके साथ ही विश्व समुदाय द्वारा इस प्रारूप को न केवल मान्यता दी गई बल्कि अपने-अपने संविधानों में स्थान देकर इसको विधिक मान्यता प्रदान की गई। परिणामस्वरूप, 10 दिसंबर, 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की गई जिसमें 30 धाराएँ हैं जिनमें नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के साथ ही आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार भी सम्मिलित है। यह भी मात्र एक संयोग है

कि संयुक्त राष्ट्र में जब मानव अधिकारों की चर्चा हो रही थी उसी समय भारत के संविधान का निर्माण हो रहा था और भारतीय संविधान में मानव अधिकारों को उच्च स्थान देते हुए उसे मूल अधिकारों के खंड में शामिल किया गया और इनकी रक्षा की जिम्मेदारी न्यायपालिका को सौंपी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब इन मानव अधिकारों की चर्चा करते हैं तो हमारा उद्देश्य सभी प्रकार के भेदभाव का अंत करना है और यहाँ के निवासी बिना किसी भेदभाव के अधिकारों और स्वतंत्रताओं के अधिकारी हैं अर्थात् जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक रूझान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाना।

भारत के संदर्भ में मानव अधिकार

भारत 'वसुधैव कुटुंबकम्' की धारणा में विश्वास रखता है। भारतीय संविधान का उद्देश्य है कि किसी के साथ अन्याय या शोषण न हो। इसके लिए यहाँ पर सशक्त न्यायपालिका, अल्पसंख्यक आयोग, पिछड़ा वर्ग आयोग, बाल अधिकार संरक्षण आयोग, अनुसूचित जाति व जनजाति हेतु राष्ट्रीय आयोग आदि सरकारी संस्थाएँ मौजूद है जो मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रयासरत हैं। परंतु इन संस्थाओं के दोषपूर्ण कार्यान्वयन से मानव अधिकारों का हनन हो रहा है। भारत में अस्पृश्यता व जातिभेद विद्यमान है। इसके अलावा बाल वेश्यावृति और बाल श्रमिको से बलात् काम कराया जा रहा है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार सभी को समान रूप से उपलब्ध है परंतु अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का फायदा केवल शक्तिशाली वर्ग को ही प्राप्त है और कमज़ोर वर्ग में मानव अधिकारों का हनन कई रूपों में विद्यमान है।

यह कहना भी गलत नहीं होगा कि हम जैसे-जैसे विकास की ओर अग्रसर हो रहे हैं मानव अधिकारों का हनन ज्यादा से ज्यादा हो रहा है। अगर हम मानव अधिकारों और विकास को एक साथ देखे तो ऐसा प्रतीत होता है और हमारे सामने प्रश्न उभर कर आता है कि विकास और मानव अधिकार-हनन दोनों का ग्राफ ऊपर की ओर है। हमारा देश विकास तो बहुत तेजी के साथ कर रहा है परंतु मानव अधिकारों का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से हनन हो रहा है। इसलिए वर्तमान समय में मानव विकास के लिए मानव अधिकारों का संरक्षण बेहद जरूरी हो गया है।

हाल ही के वर्षो में मानव अधिकार हनन के सबसे अधिक मामले घरेलू हिंसा, यौन शोषण, मानसिक प्रताड़ना, शारीरिक उत्पीड़न और कन्या भ्रूण हत्या से जुड़े हैं। इसके अलावा, दलितों व आदिवासियों के भू-अधिकारों की समस्या जहाँ इनके परंपरागत मूलभूत अधिकारों की पहचान भी नहीं हो पाई और इनको लोक-कल्याणकारी योजनाओं के तहत पर्याप्त लाभ नहीं मिल पाया है।

दुर्भाग्यवश, जिस भारत ने सभ्यता के प्रारंभ से ही विश्व के मानव मात्र के अधिकारों व कर्त्तव्य की शिक्षा दी, वही भारत वर्तमान समय में सबसे बड़ा धर्म निरपेक्ष, गणतंत्र राष्ट्र होकर मानव अधिकारों की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। यहाँ पर लोग ग़रीबी, भुखमरी, असमान विकास, कुपोषण से ग्रस्त हैं। भारत की चौथाई आबादी ग़रीबी और भुखमरी के साथ जीवन

व्यतीत कर रही है। इसके साथ ही बहुत से भारतीय अशिक्षा के अंधेरे में है और समाज का बहुत बड़ा वर्ग शोषण के दंश से उत्पीड़ित है अर्थात् हम कह सकते हैं कि आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी गरिमापूर्ण जीवन जीने के मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के कार्य

- मानव अधिकारों के उल्लंघन से संबंधित कोई मामला यदि इस आयोग के संज्ञान में आता है या शिकायत के माध्यम से लाया जाता है तो आयोग उसकी जाँच कर सकता है।
- इसे मानव अधिकारों के उल्लंघन से संबंधित मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है।
- ये आयोग मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु रक्षा उपायों की समीक्षा कर सकता है और बदलाव के लिए सिफ़ारिश भी कर सकता है।
- ये आयोग मानव अधिकार के लिए अनुसंधान का कार्य भी करता है।
- आयोग किसी भी जेल का दौरा कर सकता है और जेल बंदियो के लिए उनकी स्थिति में सुधार की दृष्टि से सुझाव दे सकता है।
- आयोग, समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मानव अधिकारों से जुड़ी जानकारी का प्रचार करता है और लोगों को इन अधिकारों की सुरक्षा के प्रति जागरूक करता है।
- आयोग के पास दीवानी अदालत की शक्तियाँ है।
- आयोग केंद्र व राज्य सरकारों को मानव अधिकारों के उल्लंघन को रोकने के लिए सख्त क़दम उठाने की सिफ़ारिश कर सकता है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की सीमाएँ

- आयोग के पास कोई विशेष तंत्र नहीं है अर्थात् इसके पास खुद की कोई जाँच एजेंसी नहीं है और ये सरकार को संबंधित मामले की जाँच करने का आदेश देता है।
- आयोग के पास केवल सिफ़ारिश का ही अधिकार है। ये अपने निर्णय को लागू करने के लिए सरकार को बाध्य नहीं कर सकता।
- आयोग की सबसे कमी है कि ये घटना होने के एक साल बाद दर्ज कराए गए मामले की जाँच नहीं कर सकता इसलिए कई शिकायतें बिना जाँच के ही रह जाती हैं।

समस्या एवं समाधान

मानव अधिकार की समस्या के समाधान के लिए भारत स्वतंत्रता के बाद से ही इसके लिए दृढ़ प्रतिज्ञ रहा है और काफी हद तक इसमें सफलता भी मिली है। मानवीय मूल्यों के पक्षधर अर्थात् सामाजिक कार्यकर्ता समय-समय पर उत्पीड़न, बर्बरता, अमानवीय व्यवहार के संबंधित प्रश्न उठाते रहते हैं और लोगों को अधिकारों के प्रति सचेत करने का कार्य समय-समय पर करते रहते हैं। इन समस्याओं के लिए क्या समाधान होना चाहिए यह राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का केंद्र बिंदु है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार घोषणा-पत्र पर भारत ने 1948 में हस्ताक्षर किए थे हालाँकि 1947 में जब भारत का संविधान बना उसमें मौलिक अधिकारों के माध्यम से मानव अधिकारों को मान्यता दे दी गई थी। भारतीय संविधान के भाग तीन में विधि के समक्ष समानता (अनु.14), धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर विभेद का निषेध (अनुच्छेद 15), अवसर की समानता (अनुच्छेद 16), अस्पृश्यता का अंत (अनुच्छेद 17), वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19), अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण (अनुच्छेद 20), प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 21), मानव के दुर्व्यापार एवं बलात् श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद 24) धर्म की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 29, 30) इत्यादि अधिकार भारत के नागरिकों को प्रदान किए गए हैं और कुछ अधिकार तो अनागरिकों को भी प्रदान किए गए हैं। भारत के संविधान में स्पष्ट उल्लेख है कि अगर किसी के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है तो अनुच्छेद 32 एवं अनुच्छेद 226 में सांविधानिक उपचार भी उपलब्ध हैं।

केंद्र सरकार द्वारा इन अधिकारों के संरक्षण और संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित अभिसमयों व प्रसंविदाओं की पालना हेतु 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के अंतर्गत किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत सभी राज्यों को भी मानव अधिकार आयोग के गठन का निर्देश दिया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक जिला मुख्यालय पर मानव अधिकार न्यायालय की स्थापना की जाएगी जिससे मानव अधिकार संबंधी मामलों का त्वरित निपटान हो सके।

इस प्रकार राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग सही मायनों में मानव अधिकारों के उल्लंघन का कुशल प्रहरी तभी बन पाएगा जब सरकार द्वारा आयोग के निर्णयों को पूरी तरह से लागू किया जाए। मानव अधिकार आयोग ऐसे किसी मामले की जाँच नहीं कर सकता जिसकी शिकायत घटित होने के एक साल बाद की गई हो इस तरह के प्रावधान को निरसित करके ही राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को प्रभावशील बनाया जा सकेगा।

निष्कर्ष

मानव के विकास के लिए कुछ अधिकार समान रूप से सभी को मिलने चाहिए परंतु दुनिया में ऐसे कई व्यक्ति है जो इन अधिकारों अर्थात् मानव अधिकार से वंचित रह जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान देखा जब मानव अधिकारों का व्यापक उल्लंघन हुआ और लाखों लोग शरणार्थी का जीवन जीने के लिए मजबूर हो गए। एक सभ्य समाज में रहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के पास मानव अधिकार का संरक्षण होना बेहद जरूरी है। एक वाक्य में कहे तो मानव अधिकार हर व्यक्ति के प्राकृतिक या नैसर्गिक अधिकार है और इसके अंतर्गत ही व्यक्ति को जीवन, आज़ादी, सम्मान, बराबरी का अधिकार मिलता है। इसके अलावा, गरिमापूर्ण जीवन जीने के अधिकार, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार भी इसके अंतर्गत आते हैं।

इन मानव अधिकारों के संरक्षक के लिए ही 10 दिसंबर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों पर सार्वभौम घोषणा-पत्र जारी किया। 16 दिसंबर, 1966 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दो अंतरराष्ट्रीय समझौते का प्रारूप प्रस्तुत किया जिसमें 'नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय समझौता' तथा 'आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय समझौते' का प्रारूप प्रस्तुत किया जिसमें भारत भी एक हस्ताक्षरकर्ता देश है।

भारत में मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोग एवं मानव अधिकार न्यायालय कार्यरत हैं। यह राज्य तथा केंद्र सरकारों को मानव अधिकारों के उल्लंघन को रोकने के लिए महत्त्वपूर्ण क़दम उठाने के लिए दिशा-निर्देश दे सकता है। मानव अधिकारों और इनके उल्लंघन से जुड़े मुद्दों को गंभीरता से देखा जाना चाहिए इनके संरक्षण के लिए सतत् रूप से प्रभावशाली क़दम उठाया जाना चाहिए और राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोग एवं मानव अधिकार न्यायालय को अधिक सशक्त बनाना ऐसे उपायों की श्रृंखला में एक महत्त्वपूर्ण क़दम होगा।

केंद्र सरकार द्वारा पिछले कुछ वर्षों में कई ठोस क़दम उठाए गए हैं। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार योजना, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, खाद्य सुरक्षा क़ानून आदि। परंतु अभी भी अनेक कार्य इस दिशा में किए जाने हैं सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है जनसाधारण को मानव अधिकारों के प्रति जागरूक करना और निरक्षर जनता के लिए विधिक साक्षरता कार्यक्रम चलाया जाए और उसमें मानव अधिकार को भी एक विषय के रूप में शामिल किया जाए।

मानव अधिकार की उपधारणा बहुत व्यापक है। इसलिए मानवता के समक्ष जो समस्याएँ है उनका समाधान करना ही इस उपधारणा का लक्ष्य है। विकास के नाम पर मानव अधिकारों का हनन नहीं होना चाहिए। अंततः मानव अधिकारों के हनन को क़ानून का परिपालन करने की सजगता द्वारा ही रोका जा सकता है।

❑

संदर्भ

1. सिंह, सुरेंद्र, भारत में मानव अधिकार : समस्या एवं समाधान, Innovation The Research Concept - Vol 2(1) : 11-15 (2017)
2. दृष्टि डेली अपडेट्स, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग : भूमिका व प्रभावकारिता, 21 नवंबर, 2020
3. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग भारत, मानव अधिकार : नई दिशाएँ, 13, 2016
4. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, क़ानून प्रकाशक, नवंबर 19, 2019

डॉ. दीपक निकुब

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक अवधारणा एवं इसकी चुनौतियाँ

सारांश

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा ने 10 दिसंबर, 2022 को संयुक्त राष्ट्र के निर्देशन में अपनी 74वीं वर्षगाँठ पूर्ण की हैं। 75वें वर्ष में प्रवेश कर लेने के उपरांत भी हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि साठवीं वर्षगाँठ के मौके पर विश्व-व्यापी समुदाय ने अपने वक्तव्य में यह कहा था कि आज से साठ वर्ष पूर्व क्रूरता, घृणा और विनाश जैसी साझा विश्वासों की शक्ति एवं सम्मानजनक और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की एक आम दृष्टि पर विजय प्राप्त किया जाना संभव नहीं था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान क्रियान्वित भयावहता से उत्पन्न दुःख और शर्म से उभरने के बाद यह घोषणा मानवता की सबसे बड़ी जीत में से एक थी। उक्त घोषणा एक बेहतर समाज के निर्माण की इच्छा को स्थापित करती है जहाँ खुशी और स्वतंत्रता की खोज आपस में जुड़ी हुई हैं। उक्त घोषणापत्र के लेखक जो विभिन्न प्रकार के राष्ट्रों और संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते थे, अंततः मानव अधिकारों के प्रथम वैश्विक वक्तव्य को स्थापित करने में सफल रहे जो हर किसी को सम्मान, निष्पक्षता और समानता के वातावरण में जीने की सक्षमता प्रदान करते हैं। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा ने एक ऐसे समाज की कल्पना की जिसमें न केवल हर पुरुष, महिला और बच्चे को आवास, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और अवसर की समानता का लाभ मिलता है, बल्कि उत्पीड़न, हिंसा और पूर्वाग्रहों से भी सुरक्षा प्रदान की जाती हैं। यहीं मतैक्यता मानव अधिकारों की सार्वभौमिक संस्कृति की प्रतीक है, जिसे हम निर्मित करना चाहते थे, और इस तरह, वर्तमान में ये सभी सभ्यताओं को पुनर्गठित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारक सिद्ध हुआ है।

शब्दकुंजी : मानव अधिकार, मानव अधिकारों की सार्वभौमिक अवधारणा, मानव अधिकार संबंधी चुनौतियाँ

प्रस्तावना : मानव अधिकार एक वैश्विक मानदंड है जो विभिन्न राष्ट्रों द्वारा अपने निवासियों के साथ किए जा रहे व्यवहार को मार्गदर्शित और विनियमित करते हैं। मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948 को संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानव अधिकारों को बनाए रखने के लिए राष्ट्रों

को निर्देशित करने वाले एक क़ानूनी ढाँचे के रूप में लागू किया गया था। हालाँकि, इस उद्घोषणा के पीछे मुख्य घटना द्वितीय विश्व युद्ध थी जो मानव अधिकारों के उल्लंघन की नींव बनी। इस घटना के फलस्वरूप कई देशों ने इन अत्याचारों को समाप्त करने और मानवीय गरिमा को बढ़ावा देने की आवश्यकता को पहचाना। यहीं मानव अधिकारों का विचार बाद में विभिन्न मानव अधिकार संधियों को अपनाने के साथ ही अंतरराष्ट्रीय क़ानून का एक हिस्सा बन गया।

वर्तमान में, दुनिया भर में अनेक राष्ट्र मानव अधिकारों का समर्थन करते हैं और अधिकांश ने तो मानव अधिकार समझौतों की पुष्टि भी की हैं। इसके अलावा, अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार क़ानूनों के विकास ने मानव अधिकार संबंधी अपराधों के ख़िलाफ़ लोगों की रक्षा के लिए समर्पित एक और महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक क्षेत्र को जन्म दे दिया हैं। इस प्रकार, मानव अधिकारों के विचार ने न्याय और मौलिक अधिकारों की महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं को आगे बढ़ाने में मदद की हैं। हालाँकि, इन अवधारणाओं को सतत् रूप से क्रियान्वित किया जाना चाहिए ताकि विभिन्न वैश्विक सरकारों को ऐसी गतिविधियों में भाग लेने से रोका जा सके जो अन्यथा मानव अधिकारों का उल्लंघन करती हैं।

यह भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है कि अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को मुख्य रूप से संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राष्ट्रों द्वारा अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार नियमों की स्थापना और अनुमोदन के उदेश्य से बढ़ावा दिया गया था। वहीं दूसरी ओर अंतरराष्ट्रीय संदेह और जाँच के संबंध में मानव अधिकारों के उल्लंधन को रोकने के लिए किए गए समझौते वैश्विक सरकारों को मजबूर करके अंतरराष्ट्रीय संप्रभुता को परिलक्षित करते हैं। मानव अधिकारों के व्यापक विचार को वर्गीकृत करने के लिए प्रमुख रूप से सात श्रेणियों का उपयोग किया जाना संभव हैं। उदाहरण के लिए, सुरक्षा अधिकार सामान्यतः विनाश, बलात्कार या हत्या से मानवीय सुरक्षा को सुनिश्चित करते हैं, जबकि स्वतंत्रता संबंधी अधिकार, व्यक्तियों की स्वतंत्रता को बल प्रदान करने, संबद्ध करने और स्वयं को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करते हैं। मानव अधिकारों का हिस्सा होने के अलावा, राजनीतिक स्वतंत्रता में राजनीति में भाग लेने, विरोध करने और मतदान करने की अप्रतिबंधित क्षमता शामिल हैं। नियत प्रक्रिया अधिकार, समानता के अधिकार, एवं अल्पसंख्यकों और समूहों के अधिकार अतिरिक्त मानव अधिकार हैं। उचित क़ानूनी प्रक्रियाओं के माध्यम से, क़ानून के समक्ष समानता और ग़ैर-भेदभाव, क्रमशः तीनों ही मानव अधिकारों की सुरक्षा को सक्षम बनाते हैं। मानव अधिकार अक्सर सार्वभौमिक सिद्धांत होते हैं जो पवित्र और अपरिवर्तनीय न्यायिक निर्णयों से निर्मित होते हैं, फलस्परूप वे अन्य क़ानूनों से भिन्न होते हैं।[1]

क्या मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता संभव हैं?

मानव अधिकार सार्वभौमिक है या नहीं, इस सवाल पर हाल के दशकों में काफी बहस होती रहती है। दुनिया भर में होने वाले उत्पीड़न, अत्याचार और अन्य भयावहताओं के साथ,

यह स्पष्ट है कि अधिकारों का सदैव समर्थन किया जाना संभव नहीं हैं। यह शोध पत्र इस विचार पर भी ध्यान केंद्रित करेगा कि एक राजनीतिक उपकरण के रूप में मानव अधिकारों की बहस ने पश्चिम दोनों में इसकी सार्वभौमिकता के दावों को और अधिक कमज़ोर कर दिया हैं। इस दृष्टिकोण का उपयोग इन अधिकारों की अन्य व्याख्याओं को प्रस्तावित करने और उन परिवर्तनों को उजागर करने से पूर्व सार्वभौमिक मानव अधिकारों के ख़िलाफ़ उठाए गए तर्कों का विश्लेषण करने के लिए किया जाना उचित प्रतीत होता है।

यह कहना भी उचित होगा कि सार्वभौमिक मानव अधिकारों की वैधता मानविकी में अन्याय के सांप्रदायिक इतिहास पर आधारित मानव अधिकारों की धारणाओं द्वारा दृढ़ता से अभिसमर्थित है, विशेष रूप से मुख्य धारा के मानव अधिकार सिद्धांतों के हानिकारक गलत बयानों के आलोक में। यह स्पष्ट है कि मानव अधिकारों को आगे बढ़ाने और उनकी रक्षा करने में नागरिक और समाज अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटक हैं। अतः मानव अधिकारों में सार्वभौमिक होने की क्षमता है, यदि अंतरराष्ट्रीय समुदाय रचनात्मक भूमिका निभाना जारी रखता है और मानव अधिकारों के लिए घरेलू प्रयासों को अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों द्वारा समुचित रूप से निरंतर अनुसमर्थित किया जाता हैं।[2]

सार्वभौमिक मानव अधिकार संबंधी चुनौतियाँ

संयुक्त राष्ट्र ने लगभग पचहत्तर साल पहले मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को मंजूरी दे दी थी जिसके परिणामस्वरूप इसको लेकर वैश्विक समुदाय में एक चेतना जागृत हुई हैं। उक्त अवधारणा सजातीय वैश्विक समुदाय और सजातीय सामाजिक आदर्शों के साथ-साथ एक मानकीकृत तंत्र को विकसित करने का काम करती हैं जो इन अधिकारों का प्रयोग करने के लिए उपकरणों के एक सेट का निर्माण करती है, फलस्वरूप आदर्श राज्य के अस्तित्व की अवधारणा के विकास को बल मिला है। उपर्युक्त संपूर्ण तंत्र प्रत्येक मानव को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह संपूर्ण संसार में, सार्वभौमिक रूप से, मानव अधिकार संबंधी ज्यादतियों से अपनी सुरक्षा सुनिश्चित कर सकता हैं।

वैश्विक शासन प्रणाली में, प्रमुख रूप से, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्यों के बीच संघर्ष, अराजकता और गहरी असहमति उस दुनिया की ओर हमारा ध्यान इंगित करती है जिसमें हम रहते हैं। यदि हम इस तथ्य पर विचार करें कि संयुक्त राष्ट्र संगठनों के पास एक सुसंगत कार्यक्रम के रूप में उक्त संघर्ष का समाधान है, तो यह बात भी विखंडन योग्य हैं। हालाँकि यह एक साझा सार्वभौमिक सपने के निर्माण की आवश्यकता का संकेत दे सकता है, परंतु एक सार्वभौमिक भावना और एक खंडित सामाजिक वास्तविकता के बीच का तनाव हमें वह आधार प्रदान नहीं करता है जिसकी हमें एक सार्वभौमिक रूपरेखा बनाने हेतु आवश्यकता हैं।[3]

यदि सीधे शब्दों में कहा जाएँ तो एक सार्वभौमिक उद्घोषणा को सामान्यतः एक बहुत

ही असमान, हाशिए पर अवस्थित और धुव्रीकृत वैश्विक समाज की ओर से सुविचारित विशेषज्ञों के एक छोटे समूह द्वारा निर्मित एवं घोषित किया जाना संभव नहीं हैं। सरल शब्दों में, मानव अधिकार एक स्वतंत्र व्यक्ति के सबसे बुनियादी अधिकार हैं, अतः कुछ प्रतिनिधियों के समूह द्वारा उक्त अधिकारों को उन लोगों से छीन लेना और प्रदान किया जाना संभव प्रतीत नहीं होता।

सार्वभौमिक मानव अधिकार सिद्धांत का अनुसमर्थन

मानव अधिकार अविच्छेद, अविभाज्य, सार्वभौमिक और अन्योन्याश्रित हैं। चूँकि हर कोई समान अधिकारों के साथ पैदा हुआ है, चाहे वो किसी भी स्थान पर निवास करते हों, उनका लिंग, रंग, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं जातीय विरासत सार्वभौमिक हैं। अतः यह विदित है कि किसी भी व्यक्ति के अधिकार कभी भी छीने नहीं जा सकते, वे अविच्छेद हैं। यह भी समान महत्त्व का विषय है कि सभी अधिकार, जिनमें प्रमुख रूप से राजनीतिक, नागरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक, समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं और किसी एक के बिना दूसरे का पूरी तरह से आनंद लिया जाना संभव नहीं है, अतः वे अविभाज्य और अन्योन्याश्रित दोनों हैं। वे सभी के लिए समान रूप से लागू होते हैं, और हर किसी के फ़ैसलों एवं जीवन पर प्रभाव डालते प्रतीत होते हैं। कर्त्तव्य-धारकों को अंतरराष्ट्रीय मानदंडों के लिए जिम्मेदार ठहराए जाने और क़ानून के शासन द्वारा समर्थित होने की न्यायोचित माँगों से उन्हें बढ़ाया जाता हैं। मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता को बल प्रदान करने के संबंध में कुछ प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं --

सार्वभौमिकता और अविच्छेद्यता : मानव अधिकार असंक्राम्य और सार्वभौम दोनों हैं। दुनिया में कहीं भी और हर किसी का उन पर अधिकार हैं। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 1 में कहा गया है कि ''सभी मनुष्य स्वतंत्रता और सम्मान संबंधी अधिकारों को समान रूप से, जन्म से ही धारण किए होते हैं'' जो इस विचार को समाहित करता है कि मानव अधिकार सार्वभौमिक हैं।

अविभाज्यता : मानव अधिकार अपरिवर्तनीय और अविभाज्य हैं। मानव अधिकार हर व्यक्ति की गरिमा का हिस्सा है, चाहे वे नागरिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक सरोकारों से संबंधित हों। इस वजह से, मानव अधिकारों को पदानुक्रम में रखना असंभव है, क्योंकि उन सभी को समान दर्ज़ा प्राप्त हैं। जब किसी व्यक्ति को किसी एक अधिकार से वंचित किया जाता है तो उसके परिणामस्वरूप उसके अन्य अधिकारों का प्रयोग हमेशा बाधित होता हैं।

अन्योन्याश्रितता और परस्पर संबंध : मानव अधिकार कई अलग-अलग तरीकों से जुड़े हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति विकास, शारीरिक कल्याण, मनोवैज्ञानिक समर्थन और आध्यात्मिक पूर्ति के लिए अपनी आवश्यकताओं को पूरा करके मानवीय गरिमा की प्राप्ति में सहायता करता

हैं। एक अधिकार की पूर्ति अक्सर पूरी तरह या आंशिक रूप से अन्य अधिकारों की पूर्ति पर निर्भर करती हैं। उदाहरण के लिए, कुछ स्थितियों में, स्वास्थ्य के अधिकार की प्राप्ति विकास, शिक्षा या ज्ञान के अधिकार की प्राप्ति पर निर्भर हो सकती हैं।

समानता और भेदभाव-विरोधी : प्रत्येक मनुष्य की अपनी एक आंतरिक गरिमा है जो उसे अन्य लोगों के बीच समानता का भाव उत्पन्न करवाने में सहायक हैं। इसलिए, मानव अधिकार मानदंडों के अनुसार, किसी को भी जन्म, नस्ल, रंग, जातीयता, लिंग, आयु, भाषा, यौन अभिविन्यास, धर्म, राजनीतिक राय, राष्ट्रीय, सामाजिक या भौगोलिक मूल, बाधा, संपत्ति या किसी अन्य स्थिति के आधार पर भेदभाव के अधीन नहीं होना चाहिए।

भागीदारी और समावेशन : हर किसी को ऐसे निर्णय लेने की प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने एवं भाग लेने का अधिकार है, जिनका उनके जीवन और कल्याण पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता हैं। समुदायों, नागरिकों, समाज, अल्पसंख्यकों, महिलाओं, युवाओं, स्वदेशी लोगों और अन्य नामित समूहों को अधिकार-आधारित पहलों में सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए।

क़ानून का शासन और जवाबदेही : मानव अधिकारों को बनाए रखने के लिए राज्य और अन्य कर्त्तव्य-धारक जिम्मेदार हैं। उन्हें इस संबंध में अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार समझौतों में निर्धारित क़ानूनी आवश्यकताओं और मानकों का पालन करना चाहिए। प्रभावित अधिकार धारकों को क़ानून के नियमों और प्रक्रियाओं के अनुरूप सक्षम अदालतों या अन्य मध्यस्थों के समक्ष पर्याप्त उपाय के लिए क़ानूनी कार्यवाही को प्रारंभ करने का अधिकार है और यदि वे ऐसा करने में विफल रहते हैं तो यह क़ानून के शासन की अवहेलना हैं। व्यक्तियों, मीडिया, नागरिक, समाज और अंतरराष्ट्रीय समुदाय सभी का इस बात पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है कि मानव अधिकारों की रक्षा के लिए नेक इरादे वाली सरकारें अपने कर्त्तव्यों का पालन कैसे करती हैं।[4]

मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता संबंधी चुनौतियों के उन्मूलन हेतु प्रयास

बेशक, स्थानीय, राष्ट्रीय और विश्वव्यापी पैमाने पर, दर्शन, संस्कृति और उद्देश्यों में मतभेद अक्सर मिलते हैं। इस विविधता के कारण मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता को समान रूप से आगे बढ़ाना एक चुनौतीपूर्ण प्रयास हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम इसे कितना यथार्थवादी और व्यावहारिक मानते हैं।

मानव अधिकारों पर चर्चा करते समय, शब्द 'सांस्कृतिक सापेक्षवाद' अक्सर हमें गलतफहमी की ओर ले जाता हैं। संस्कृति के प्रति इस सापेक्षवाद का वास्तव में क्या अर्थ है? सीधे शब्दों में कहें तो, सांस्कृतिक सापेक्षवाद एक विचार है जो यह मानता है कि सभी संस्कृतियाँ समान है और सांस्कृतिक मानदंडों का विश्लेषण करते समय, सार्वभौमिक सिद्धांत महत्त्वहीन हो जाते हैं। यह भी समान रूप से महत्त्व रखता है कि बाहरी मूल्य समुदाय के मूल्यों से बेहतर नहीं

हैं। उदाहरण के रूप में 21वाँ मानव अधिकार जो दूसरों के प्रति कठोर या अपमानजनक व्यवहार की मना ही करता है, यदि स्थानीय संस्कृति इस विकृति को सहन करने की क्षमता रखती है तो ऐसे स्थान पर इसे लागू किया जाना आवश्यक नहीं समझा जाएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी बाहरी सिद्धांत को उस संस्कृति में स्वीकार्य नहीं होने पर सांस्कृतिक मानदंड पर हावी नहीं होने दिया जाएगा।

सांस्कृतिक सापेक्षवाद की आलोचनात्मक स्वीकृति में यह दोष है कि यह हमें सांस्कृतिक मानदंडों को जन्म देने वाली सामाजिक संरचनाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करने से रोकता हैं। परंतु मूल प्रश्न यह है कि यह कौन तय करता है कि संस्कृति क्या है? सांस्कृतिक, धार्मिक और क़ानूनी मानकों को परिभाषित करने की क्षमता परिणाम को प्रभावित करती है, जैसाकि मानव अधिकारों के निर्माण में सांस्कृतिक सापेक्षवाद के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इस वजह से, हमें सांस्कृतिक मानदंडों को वैश्विक मानव अधिकार मूल्यों से ऊपर उठाने से बचना चाहिए।

सार्वभौमिकता और सांस्कृतिक सापेक्षवाद मानव अधिकारों के लिए चल रही लड़ाई की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। किसी को भी दूसरों से निर्देश प्राप्त करने में आनंद नहीं आता। जब स्थानीय संस्कृति वैश्विक मानव अधिकार अवधारणाओं के महत्त्व को नहीं पहचानती और उसकी सराहना नहीं करती, तब किसी भी समाज में मानव अधिकारों की उन्नति रुक जाती हैं। अतः इसका उद्देश्य स्थानीय संस्कृति को ध्यान में रखते हुए, व्यक्तियों को मानव अधिकारों की वैश्विक अवधारणाओं पर शिक्षित करना हैं, कहने का तात्पर्य यह है कि कभी-कभी सार्वभौमिकता को संस्कृति पर वरीयता भी देनी चाहिए।[5]

निष्कर्ष एवं सुझाव

एक सार्वभौमिक एवं स्वतंत्र मत यह है कि मानव अधिकार वे विशेषाधिकार हैं जो जन्म के साथ ही सभी लोगों को प्रदान किए जाते हैं। मानव अधिकार अहस्तांतरणीय हैं, अनुबंध से मुक्त हैं, कार्य द्वारा अपरिभाषित हैं, और किसी भी अन्य स्थिति से अप्रभावित हैं। इस प्रकार, दायित्वों को अधिकारों द्वारा निहित किया जाता है, क्योंकि वे वैध दावों या हकदारी के रूप में अवस्थित हैं। चूँकि वे अहस्तांतरणीय है अतः मानव अधिकार किसी भी मानव समुदाय में राजनीतिक नैतिकता की नींव के रूप में कार्य करते हैं जो उन्हें बनाए रखने का प्रयास एवं दावा करते हैं। इसलिए वैश्विक दृष्टिकोण से, मानव अधिकारों में समान राजनीतिक और क़ानूनी स्वतंत्रता के दावे हैं। उदारवाद ने मानव अधिकार सिद्धांतों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, यद्यपि कैथोलिक विश्वास और पश्चिमी संस्कृति वह जगह है जहाँ मानव अधिकारों का पहली बार उदय हुआ, उदारवाद ने मानव अधिकार सिद्धांत के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है और पश्चिम में इसका प्रभुत्व मानव अधिकारों के विचार के गठन से जुड़ा था। भले ही मानव अधिकारों की अवधारणा पश्चिमी संस्कृति और कैथोलिक परंपरा में उत्पन्न हुई है, फिर भी यह इस बात का पालन नहीं करती है कि मुस्लिम देशों सहित अन्य संस्कृतियों

को इसके पालन से छूट दी गई हैं। यह धारणा सामान्यतः इस तथ्य के कारण है कि सभी लोगों को पहले से ही समान अधिकार योग्य माना गया है जो उन्हें सार्वभौमिक बनाता हैं। मानव अधिकार हमेशा व्यक्तिवादी नहीं होते, इस तथ्य के बावजूद कि वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अधिक जोर देते हैं। मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता को इस तथ्य से भी बल मिला है कि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के लेखों में विशेष रूप से समुदायवाद का संदर्भ दिया गया हैं।

❑

संदर्भ

1. Universal Conception of Human Rights and Its Challenges, https://studycorgi.com/universal-conception-of-human-rights-and-its-challenges/(Last visited on May 24, 2023)
2. Can and Should Human Rights Be Universal?, https://www.e-ir.info/2013/12/01/can-and-should-human-rights-be-universal/ (Last visited on May 24, 2023)
3. Universal Human Rights and the Challenges of Inclusion, https://www.mcgill.ca/humanrights/article/universal-human-rights-and-challenges-inclusion (Last visited on May 24, 2023)
4. Human Rights Principles, https://www.unfpa.org/resources/human-rights-principles (Last visited on May 24, 2023) articles/article10.pdf (Last visited on May 24, 2023)
5. Human Rights: Challenges and Promise, https://ehs.siu.edu/socialwork/_common/documents/articles/reichert-

मानव अधिकारों की रक्षा हमारी संस्कृति का
अहम हिस्सा है।

-- भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी

डॉ. रमेश चंद सैनी

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में मानव अधिकार

प्राचीन भारतीय सभ्यता में कला, साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, वास्तु आदि मानवीय मूल्यों का प्रारंभिक विकास पूर्णतः परिलक्षित हुआ है। मानव सभ्यता के इतिहास में 'वसुधैव कुटुंबकम्' का उद्घोष मनुष्य की वैचारिक यात्रा का वह प्रस्थान बिंदु है जहाँ से मानव अधिकार की चिंतन प्रक्रिया प्रारंभ होती है और व्यक्ति अपने स्व, समूह तथा परिवार को संपूर्ण वैश्विक जगत से जोड़कर समाज को इतना विस्तार देता है कि पूरी दुनिया ही 'कुटुंब' बन जाती है। भारतीय संस्कृति की सर्वप्रमुख विशेषता रही है कि इसमें लौकिक व्यवहार के क्षेत्र में सर्वदा वैसे ही मूल्यों एवं सिद्धांतों को स्थान दिया गया है जो व्यक्ति में ब्रह्मांड के साथ एकाकार करने का भाव सृजित करें। 'सर्वे भवंतु सुखिनः' का भाव ज्यों ही व्यवहार का रूप लेता है मनुष्य का महान चरित्र जीवंत हो उठता है और वे समस्त दुष्प्रवृत्तियाँ जो उसे भ्रष्ट, अत्याचारी, अनाचारी, अहंकारी और मदांध बनाती है, स्वतः समाप्त हो जाती हैं। जीवन जगत के संबंध में अतुलनीय चिंतन, परंपरा से समृद्ध भारतवर्ष की घरती पर विगत चंद दशकों से गम्भीर विचार मीमांसा का विषय बना मानव अधिकार कितना आधुनिक है और कितना प्राचीन, एक विवादास्पद एवं ज्वलंत प्रश्न है और यह तब तक ज्वलंत बना रहेगा जब तक कि इसका सर्वमान्य उत्तर नहीं ढूँढ़ लिया जाता है।

मूल शब्द : मानव अधिकार, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, दर्शन।

सभ्यता और संस्कृति की चिंतन-धारा में मानव की अस्मिता, मानवीय गरिमा की सर्वोच्चता, मानवीय प्रतिष्ठा की अपरिहार्यता और मानव के सर्वांगीण विकास का भाव प्रकट हुआ है। इस विश्वव्यापी और सार्वभौमिक अवधारणा के अंतर्गत हमारे देश में भी मानव अधिकारों के विभिन्न संदर्भ और आयाम दृष्टिगोचर हुए हैं। दरअसल, भारतीय संस्कृति में मानव अधिकारों की अवधारणा का बीज अत्यंत प्राचीनकाल से विद्यमान हैं। प्राचीन भारत में 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः' का सिद्धांत और 'वसुधैव कुटुंबकम्' की अवधारणा सर्व प्रसिद्ध रही हैं।[1] इस प्रकार की अवधारणा न केवल सम्राट अशोक के शिलालेखों अपितु भगवान् बुद्ध के उपदेशों, महावीर स्वामी के संदेशों, बाइबिल, कुरान, और गुरु ग्रंथ साहब के पवित्र संदेशों में समान रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। साथ ही मध्यकालीन संतों की वाणियों के माध्यम से समता और सर्व कल्याण की वह धारा हम तक निरंतर प्रवाहित होती रही है जो उपनिषदों के शांति पाठों

से निकली है। इस वैचारिक सम्पत्ति से समृद्ध होने के कारण हमारे संविधान निर्माता मानव अधिकारों की अनिवार्यता और अपरिहार्यता को भली-भाँति समझ सके हैं। इसीलिए उन्होंने मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत मानव-जीवन से संबद्ध लगभग सभी पहलुओं के बारे में प्रावधान किए और मानव अधिकार की समकालीन परिकल्पना से उनका सामंजस्य स्थापित किया। यदि गौर किया जाए तो हमारे समाज में मानव अधिकारों को स्थापित करने और उनकी निगरानी करने की चुनौती दिन-प्रतिदिन जटिल होती जा रही है। विशेष रूपसे संचार क्रांति के कारण साइबर अपराध और षड्यंत्र बढ़ रहे हैं। निहित स्वार्थ, अज्ञानता तथा उपयुक्त प्रभावी व्यवस्था का अभाव, और समय पर उचित क़दम न उठा पाने के कारण अनेक क्षेत्रों में आए दिन मानव अधिकारों के हनन की घटनाएँ प्रकट हो रही हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का यह प्रयास रहा है कि ऐसी घटनाओं को संज्ञान में लेकर देश की न्यायिक व्यवस्था के अनुरूप तत्काल कार्यवाही को प्रोत्साहित किया जाए। हमारी इस पहल के फलस्वरूप अनेक ऐसे मामले जो किन्हीं कारणों से उपेक्षित थे या दबा दिए गए थे, वे सामने आए और उन पर पुनर्विचार किया जा सका। देश के कोने-कोने से आने वाली शिकायतों पर हम ध्यान देते हैं और कार्यवाही करते हैं।[2]

मानव अधिकार केवल कोरी संकल्पना नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन से जुड़ी वह मूलभूत आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति किए बिना गरिमापूर्ण जीवन का उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए जिन अनुकूल परिस्थितियों की ज़रूरत है, उनकी समग्रता का ही नाम मानव अधिकार है। इस समग्रता की पृष्ठभूमि और प्रतिष्ठा को जन व्यापी बनाने के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई है।

मानव अधिकार आयोग के प्रयासों के फलस्वरूप देश के सामाजिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में जो पहल शुरू हुई, उसका सकारात्मक परिणाम भी प्रकट हुआ है। फिर भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं और इस दिशा में काफी कार्य होना बाकी है। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि मानव अधिकारों को भारतीय सामाजिक चेतना का एक स्वाभाविक अंग बनाया जाए। दूसरे शब्दों में, आम आदमी और प्रशासन सबकी दृष्टि में मानव अधिकार सोचने और काम करने के लिए एक आधारशिला की भूमिका में आना चाहिए। जब तक हमारी सोच में ऐसा परिवर्तन नहीं होगा तब तक हमारा प्रयास अधूरा ही रहेगा। हम जिस विश्वास और विचार की प्रक्रिया को समृद्ध करने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं, न केवल भारतीय समाज के एक बड़े भाग को न्यायोचित अधिकार दिला सकेंगे बल्कि मानव अधिकारों पर खुलकर लड़ाई लड़ने और एक जागरूक समाज की स्थापना कर सकेंगे।

मौजूदा समय भारत के इतिहास का महत्त्वपूर्ण क्षण है, जब हम आज़ादी का 'अमृत-काल' मना रहे हैं। यह भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में मानव अधिकार पर विचार-विमर्श हेतु, चिंतन परंपराओं को समझने और उन्हें प्रचलित करने हेतु आवश्यक है। भारतीय संस्कृति में मानवता के संरक्षण एवं लोक-कल्याण की अगाध शक्ति है। आज संपूर्ण विश्व प्रकृति से खिलवाड़ के

कारण एक विकट स्थिति में है। ऐसे में मानवीय मूल्यों, जीव-जगत व वनस्पति का संरक्षण एवं नैतिकता पर आधारित तकनीक का उपयोग विनाश से बचने के लिए आवश्यक है।[3]

भारतीय धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, संस्कृति, वास्तु, संगीत, चिकित्सा, शिक्षा, सेवा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत ने विश्व को नया दर्शन दिया है। आस्थाओं के संगम में भारतीय सभ्यता, व्यक्ति के नैतिक उत्थान, क्षमता, समानता व करुणा पर सदैव आधारित रही है। मानव सभ्यता की उन्नति का मापदंड सद्‌बुद्धि, नैतिकता व आध्यात्मिक उत्थान हैं न कि धन, वैभव या भौतिक सम्पदा। मानव अधिकार वर्तमान समाज में महत्त्वपूर्ण हैं। मानव अधिकारों संबंधी 'सार्वभौमिक-घोषणा' सन् 1948 में लागू हुई। जिसमें (अनुच्छेद-9) के अनुसार, सभी मानव एक-समान अधिकारों व सम्मान के पात्र हैं जबकि वेद, उपनिषद् व महाभारत पुराण आदि में जो कि (3000 से 1500) ईसा पूर्व से प्रचलित हैं, उन सभी में मानवीय समानता, सामाजिकता और लोक-कल्याण का सिद्धांत व आध्यात्मिक उन्नति से मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य रहा है। 'ऋग्वेद' जिसे यूनेस्को ने विश्व की धरोहर घोषित किया है, के अनुसार तन, गृह व जीवन की स्वतंत्रता मानव हेतु आवश्यक मानी गई है। भारतीय दर्शन में अधिकार व दायित्व का निर्वाह साथ-साथ आवश्यक है।[4]

हमारे देश में विभिन्न धर्मों में मानव अधिकारों का पालन सुनिश्चित किया गया है। इन सभी में 'सबका मंगल हो, कल्याण हो, सब सुखी रहें' की भावना निहित है। धर्म से अर्थ कमाया जाना व इसका एक-भाग पात्र व्यक्ति को दान करना हमारी सांस्कृतिक परंपरा की विशेषता रही है अर्थात् धर्म-अनुसार व्यवहारगत आचरण ही मानवोचित कहा गया है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में प्रतिपादित किया गया है कि राज्य द्वारा समाज में ऐसी आदर्श परिस्थितियों का निर्माण करना आवश्यक है जिससे कर्त्तव्य, भौतिक धन और संतुष्टि (धर्म, आस्था और काम) की पूर्ति हो।[5] अथर्ववेद-सहिंता और मनुस्मृति में भी लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना की परिकल्पना की गई है। बौद्ध और जैन धर्म के विद्वानों ने भी मानव समाज में मनुष्य की समानता का उपदेश दिया और भेदभाव का प्रतिकार किया।

पुरातन भारतीय अर्थशास्त्र के अनुसार जो खेती करते हैं उन्हें ही भूमि रखने का अधिकार है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-39 (बी.) और (सी.) के अनुसार, राज्य की सम्पदा का वितरण समाज में समान रूप से होना आवश्यक है। केवल कुछ हाथों में उसका केंद्रीयकरण नहीं होना चाहिए। 'मनुस्मृति' के अनुसार, अनाथ, वृद्ध, बच्चे, असहाय व गर्भवती महिलाओं को पौष्टिक आहार प्रदान करना शासकों का पुनीत कर्त्तव्य है। 'धर्मशास्त्र' के अनुसार शासक को (विधि) सम्मत, बिना भेदभाव के निर्णय लेना चाहिए ताकि समाज में न्यायिक प्रक्रिया सुनिश्चितर हो। याज्ञवल्क्य मुनि कृत 'नारद-स्मृति' में भी, स्वतंत्र न्यायालय एवं न्यायिक प्रक्रिया के आधार पर प्रकरण का निराकरण आवश्यक कहा गया है। जनतंत्र की सार्वभौमिकता, के आधार पर सबको समान न्याय व अधिकार धर्म का भाग रहा है। यही सिद्धांत (मानव अधिकारों की सार्वत्रिक-घोषणा, अनुच्छेद-10) में भी उल्लेखित है।[6]

मानव कल्याण की आधारशिला 'सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामया' है। शांति व सद्भाव, सर्वत्र हो, सब सुखी हों। सबको अपनी इच्छा-अनुरूप धर्म अपनाने व इष्ट को मानने की स्वतंत्रता, हिंदू धर्म व भारत में अन्य प्रचलित धर्मों में प्रदत्त की गई है जो कि संविधान के अनुच्छेद 25 व 26 में निहित है। 'सर्व धर्म संभाव' हमारी मान्यता है। किसी एक धर्म का एकाधिकार व जबरन धर्मांतरण हमारी संस्कृति व परंपरा का हिस्सा नहीं है। यह मानवता के विरुद्ध है।

आज के वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) की अवधारणा हमारे लिए नई नहीं है। हमारे यहाँ 'वसुधैव कुटुंबकम्' अर्थात् 'पूरा विश्व एक परिवार है', हज़ारों साल से मूर्त रूप से चला आ रहा है। आवागमन व निवास का अधिकार, उपर्युक्त सिद्धांत के अवयव हैं। हमारी संस्कृति में पशु, पक्षी, पेड़-पौधों, पहाड़ों, नदियों को सदैव आदर से देखा गया है, पर्यावरण की रक्षा, हमारी जीवनशैली का अभिन्न अंग रहा है। शिव को पशुपतिनाथ, अर्थात् पशुओं का रक्षक कहा गया है। उनके द्वारा वनों की रक्षा की गई। भारत आज विश्व के पटल पर पर्यावरण रक्षा में अग्रणी है। मातृभूमि का ऋण, पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन से चुकाना हमारी सांस्कृतिक परंपरा है। बरगद, पीपल, तुलसी, आँवला की रक्षा और गंगाजल की शपथ भारतीय दर्शन में ही संभव है।[7]

हमारी संस्कृति में धर्मयुद्ध की मर्यादा है। महाभारत युद्धकाल में सूर्यास्त के पश्चात् विरोधी पक्ष एक-दूसरे के शिविर में निडरतापूर्वक विचरण करते थे, घायलों और पीड़ितों से मिलते थे। यह मानव-अधिकारों के संरक्षण का उच्चतम स्वरूप प्रदर्शित करता है। 'मुंडकोपनिषद्' में उल्लेखित 'सत्यमेवजयते' को राष्ट्रीय प्रतीक में स्थान दिया गया है। यह भारत में प्रचलित मूल्यों की जीवंत अभिव्यक्ति हैं।'' 12वीं शताब्दी में 'बसवेश्वर' द्वारा आयोजित 'अनुभव मंडप' जिसमें विश्व के दार्शनिकों और समाज सुधारकों ने भाग लिया, को 'दुनिया की पहली संसद' के रूप में जाना जाता है।[8] यह भारतीय समाज-सुधारकों के दूरदर्शी दृष्टिकोण को इंगित करता है। ऐसे इतिहास और परंपराओं वाले देश को कभी भी असहिष्णु नहीं माना जा सकता।

बौद्ध धर्म के प्रचलित सिद्धांत और व्यवहार भी मानव अधिकार चार्टर में प्रचुरता से परिलक्षित है। महान सम्राट अशोक के राज्य में बंदियों के साथ यातना व अमानवीय व्यवहार निषिद्ध था यहाँ तक कि तत्कालीन दासों और सेवकों के साथ अच्छा व्यवहार भी धर्म ने सुनिश्चित किया। 'अहिंसा परमो धर्म' का सिद्धांत 'शांडिल्योपनिषद्' में उल्लेखित है। राम व कृष्ण ने अहिंसा का पाठ दिया तथा हिंसा का सहारा केवल धर्म और मानवता की रक्षा के लिए ही उचित बताया। भारत में चार प्रमुख धर्म (सनातन, बौद्ध, जैन और सिख) तथा कई छोटे-छोटे अनेक धर्मो ने जन्म लिया, पर कभी उन्होंने यहाँ 'मनसा वाचा-कर्मणा'से किसी को दुःख नहीं दिया। भारत में दुनिया भर से विभिन्न संस्कृतियों के लोग आए। लेकिन अंततः सभी हमारी समृद्ध संस्कृति और परंपराओं का हिस्सा बन गए, चाहें वह छठी ईसा पूर्व में यहूदी

शरणार्थी हों, या आधुनिक समय में तिब्बती, श्रीलंकाई हो या अफगानी। भारत ने सदैव शरणागतों को सुरक्षा प्रदान कर मानव अधिकारों की रक्षा की एक लंबी परंपरा निभाई है।

हम विभिन्न मंदिरों और पुरातत्व महत्त्व के कलात्मक निर्माण को देख सकते हैं। 'एलोरा गुफा' और 'खजुराहो मंदिर', जिन्हें यूनेस्को ने विश्व विरासत स्थलों के रूप में मान्यता दी है, ''जहाँ विभिन्न संस्कृतियों के अनुयायी एक ही स्थान पर एक साथ पूजा करते हैं। यही सद्भाव व सह-अस्तित्व हमारी संस्कृति है। सिख गुरु द्वारा शुरू की गई 'लंगर' या 'सामुदायिक रसोई' की अवधारणा, ज़रूरतमंद व्यक्तियों को पोषण का अधिकार सुनिश्चित करती है। इस्लाम धर्म में भी समाजवादी सिद्धांत निहित हैं। इस्लाम में सूफी का सम्मिश्रण हुआ व 'दीन ए इलाही; द्वारा सभी धर्मों की समानता की खोज भी हुई। रामायण में मानव अधिकार का सुंदरवसरस् चित्रण है -- 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई, परपीड़ा सम नहीं अधमाई' हमारे भक्ति-दर्शन में जात-पाँत, लिंग व रंग-भेद को स्थान नहीं रहा है जो मानवता के लिए महत्त्वपूर्ण है।''[9] गुरु नानक देव ने कहा 'मानस की जात सवै एकै पहिचानबो' अर्थात् मनुष्य की कोई जाति नहीं सब एक है। इसीलिए भारतीय सभ्यता ने सभी को अपनाया। विभिन्न धर्मों को समाहित किया। यही हमारी संस्कृति की शक्ति है। यह हमारी कमज़ोरी नहीं, वरन एकात्मता के मानवीय मूल्य का संरक्षण है।

भारत शिक्षा के क्षेत्र में सिरमोर और विश्वगुरु रहा है, नालंदा, तक्षशिला, पाटलिपुत्र, विक्रमशिला तथा काशी-विद्यापीठ, इत्यादि विश्वविद्यालयों में 10, 000 से अधिक विद्यार्थी यूरोप व एशिया के विभिन्न देशों से शिक्षा प्राप्त करते थे। ग़रीबों को निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा पुरातन काल से आज तक भारत में प्रचलित व भारतीय संविधान में प्रदत्त मूल अधिकार है। गणित भी भारत की विश्व को देन है। संस्कृत संभवतः विश्व की सबसे प्राचीन भाषा है 'ऋगवेद' संस्कृत में 2500 वर्ष ईस्वी पूर्व लिखा गया प्राचीनतम ग्रंथ है जिसमें निहित 'योग' की संकल्पना संपूर्ण विश्व को भारत की देन है। योग को यूनेस्को की 'अमूर्त सांस्कृतिक विरासत सूची में शामिल किया गया है। योग से प्रदत्त दक्षता, स्वास्थ्य, सकारात्मक सोच व क्रियाकलाप द्वारा विश्व शांति व मानव-हित सुनिश्चित है। संस्कृति, कला व संगीत हमारी आत्मा के पोषक तत्व रहे हैं व ईश्वर आराधना के माध्यम हैं। संगीत में देश की आत्मा परिलक्षित होती है। कला, परंपराओं की अभिव्यक्ति है जिसमें प्रेम, घृणा, आशा, क्षमा, भय और सहानुभूति सम्मलित हैं। मानव अधिकार क्षेत्र में औपचारिक माध्यम की अपेक्षा संगीत और कहानी सुनाना अधिक प्रभावशाली है।[10]

नारी का सम्मान हमारी परंपरा है। दुर्गा पूजा के उत्सव को हाल ही में यूनेस्को की 'अमूर्त सांस्कृतिक विरासत सूची' में भी जोड़ा गया है। वैदिक काल से ही महिलाओं ने उच्चतम विद्वता से शास्त्रार्थो में भाग लिया और वेदों के लेखन में योगदान दिया। घोषा, लोपामुद्रा, मैत्रेयी और गार्गी इसके कुछ उदाहरण हैं। किसी भी सभ्यता ने स्वास्थ्य और स्वच्छता को उतना महत्त्व नहीं दिया जितना सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों ने दिया। प्राचीन भारतीय सर्जन सुश्रुत, 7वीं शताब्दी ईसा पूर्व को 'प्लास्टिक सर्जरी का जनक' माना जाता है। उन्होंने नाक के पुनर्निर्माण

के लिए माथे की त्वचा का उपयोग किया। आचार्य ने उप-महाद्वीप में चिकित्सा की नींव रखी थी।"[11] मानव अधिकारों का पाठ भारत ने विश्व को पढ़ाया। आज भी विश्व के कई देशों में मानव अधिकार सुरक्षा संबंधी संस्थाएँ अस्तित्व में नहीं हैं। कई ऐसे देश हैं जो आज भी भाषा, रंगभेद, जातीय-धार्मिकता, संस्कृति व हिंसा से उभर नहीं पाए हैं।

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सर्वसत्तावादी राजाओं तथा शासनाध्यक्षों ने अपनी प्रजा के साथ जैसा विजातीय व्यवहार किया है उसमें आमजनों की सुरक्षा एवं सम्मान को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए मानव अधिकार के वर्तमान स्वरूप की आवश्यकता थी। भारत में मानवतावाद ने अपने अंदर मानव अधिकार संबंधी संचेतना को प्राचीनकाल से इतनी गहराई से बिठा लिया कि हमें कभी इसकी आवश्यता ही महसूस नहीं हुई। यह निर्विवाद सत्य है कि समस्त विश्व में भारतभूमि पर ही सर्वप्रथम मानव सहित सभी प्राणियों एवं प्रकृति की रक्षा के महत्त्व को समझा गया। मैक्समूलर ने इसका रहस्योद्घाटन अपनी पुस्तक 'इंडिया व्हाट केन इट टीच अस' सन 1883 में लिखा गया था। उन्होंने दुनिया की प्राचीनतम भाषाओं व संस्कृतियों का गहन अध्ययन किया तो संस्कृत व भारत को अद्भुत पाया। इस पुस्तक के अनुसार दुनिया में भारत ही वो जगह है, जहाँ पर मानव जाति ही नहीं अपितु विश्व-बंधुत्व से भी आगे ब्रह्मांड बंधुत्व की कामना की जाती है। अतः प्राचीन भारत में मानव सहित प्रकृति के सभी घटकों को मानव अधिकार के निमित पर्याप्त महत्त्व और अधिकार प्रदान किए गए।[12]

निष्कर्ष

मानव-उत्पत्ति के उपरांत एक समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए व्यवस्थाएँ की गई, जिनमें मानव के संपूर्ण अधिकारों का विशेषतः उल्लेख है। हमारी संस्थाएँ मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु सक्षम है। हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि भारत में जो ढाँचा मानव अधिकार संस्थाओं का राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर है, वैसा श्रम-साध्य किसी भी अन्य देश में नहीं है। मानव अधिकारों का विस्तार किसी भी देश की सीमाओं में नहीं बंधा है। इनका पालन सबको आवश्यक है। जिससे 'सर्वे भवंतु सुखिनः' की भावना फलीभूत हो। हिंसा की घटनाएँ व आतंकवादियों द्वारा निर्दोष लोगों को मारना आज चिंता का विषय है। हमें आतंकवाद को जड़ से उखाड़ना होगा। हमारा मानव शरीर धारण करना तभी सार्थक होगा जब हम इस मानवता व मानव अधिकारों का संरक्षण व संवर्धन कर भारतीय संस्कृति में नए आयाम जोड़कर भारत को विश्व में पूर्व की भाँति अग्रणी बना सकें।

❑

संदर्भ

1. डॉ. जनकसिंह मीणा, मानव अधिकार : यथार्थ और संकल्पना, (2015), राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 05

2. दशरथ कुमार, भारतीय संस्कृति में मानव अधिकार की अवधारणाएँ, (2014), कला प्रकाशन, पृ. 141
3. व्रजवल्लभ द्विवेदी, भारतीय संस्कृति का समग्र स्वरूप, (2002), शिवा भारती शोध प्रतिष्ठान, पृ. 91
4. वही, पृ. 237
5. प्रो. कोसंबी, प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता, (2020), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 37
6. वरुणा शर्मा (संपादक), मानव अधिकार : नई दिशाएँ पत्रिका, वार्षिक अंक 2 (2005), पृ. भूमिका
7. वही, पृ. 07
8. देवकांता शर्मा, कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, पृ. 57
9. मानव अधिकार दिवस पर आयोजित भाषण के कुछ अंश, पृ. 1-2
10. एस.पी. जोशी, मानव अधिकार और कर्त्तव्य, अभिनव प्रकाशन, पृ. 25
11. कृष्ण कुमार, मौलिक अधिकार विश्वकोश, पृ. 02
12. मीणा, मानव अधिकार : यथार्थ और संकल्पना, (2015), राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 119

पृष्ठ 110 का शेष

अंक 12 महिला सशक्तिकरण विशेषांक, 16-17 अंक संविधान विशेषांक तथा 25-26 मानव अधिकार विशेषांक निकाला गया। मानव अधिकार विशेषांक वर्ष 2001 में निकाला गया था जिसका लोकार्पण तत्कालीन पूर्व मुख्य न्यायाधीश एवं राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री जगदीश शरण वर्मा तथा अन्य महान विद्वानों द्वारा नई दिल्ली में कांस्टीट्यूशन क्लब के स्पीकर हाल में एक भव्य पुरस्कार आयोजन कार्यक्रम में किया गया था। उस मानव अधिकार विशेषांक को प्रकाशित किए अब वर्ष 2023 में लगभग चौथाई शती हो गई है और इन पच्चीस वर्ष में मानव अधिकारों के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हो चुकी है। वर्तमान में देश और दुनिया में मानव अधिकारों की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए विधि भारती परिषद् ने अब पुनः यह मानव अधिकार विशेषांक निकाला है जिसमें देश के प्रबुद्ध विद्वानों ने अपने आलेख भेज कर हमें उन्होंने अनुग्रहित किया है, उनका धन्यवाद और आभार।

❑

प्रोफेसर प्यारेलाल आदिले

भारत का संविधान और मानव अधिकार

"अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं जिनके अभाव में सामान्यतया कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता है।"[1] उक्त कथन से ही स्पष्ट है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए सामाजिक वातावरण का स्वस्थ दृष्टिकोण आवश्यक होता है क्योंकि स्वस्थ एवं सकारात्मक परिस्थितियों के द्वारा ही कोई व्यक्ति अपना विकास कर सकता है। समाज में मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए कतिपय अधिकारों की आवश्यकता होती है। इनके अभाव में उसके व्यक्तित्व का विकास समाज में संभव नहीं है। इन्हीं को मानव अधिकार कहा जाता है। विश्व के सभी देशों में किसी-न-किसी रूप में संविधान पाया जाता है। सभी देशों के सविधानों ने अपने देश के नागरिकों के लिए विकास के अवसर मुहैया किए हैं। भारतीय संविधान हमारे राष्ट्र का अनिवार्य आधार है। यह एक बृहत सामाजिक-वैधिक दस्तावेज़ है जो राष्ट्र के आदर्शों को प्रतिष्ठित करता है और इन आदर्शों की प्राप्ति के लिए संस्थाएँ और प्रक्रियाओं का प्रावधान करता है। भारतीय संवैधानिकता का स्पष्ट एवं मूलभूत स्वरूप एक सम और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना प्रजातांत्रिक तरीकों से सामाजिक-आर्थिक क्रांतियों द्वारा करना है।

हमारा संविधान भारत के लोगों के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की गारंटी देता है। उपर्युक्त अधिकारों की क्षमता की शक्ति पोषणता के लिए आवश्यक है कि एक आर्थिक व्यवस्था को विकसित किया जाए जो हमारे संविधान की विशिष्टता के अनुरूप हो। इस प्रकार से देखें तो अधिकार हमारे सामाजिक जीवन की अनिवार्यता है जिनके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। वस्तुतः अधिकारों के बिना मानव जीवन के स्थिति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। दुनिया के हरेक देशों के संविधान द्वारा नागरिकों के सर्वांगीण विकास हेतु प्रयास किए जाते रहे हैं। राज्य का मूल लक्ष्य ही नागरिकों को अधिकाधिक अवसर प्रदान करना है जैसाकि लॉस्की ने ठीक ही लिखा है -- "एक राज्य अपने नागरिकों को जिस प्रकार के अधिकार प्रदान करता है उन्हीं के आधार पर राज्य को अच्छा या बुरा कहा जा सकता है।"[2]

भारतीय संविधान में भारत देश के नागरिकों के लिए मौलिक अधिकार एवं अन्य सामान्य अधिकार की बात भी की गई है। भारतीय संविधान में भाग-3 द्वारा नागरिकों को मूल अधिकार

प्रदान करते हुए अनुच्छेद 14 से लेकर 32 तक मौलिक अधिकार की व्यवस्था की गई है। "इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, 'राज्य' के अंतर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक राज्य की सरकार और विधान-मंडल तथा भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी हैं।"[3] विभिन्न संविधानिक संरक्षण के आधार पर भारतीय नागरिकों को विशेष अवसर प्रदान किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर अब तक संविधान लागू होने के उपरांत अनेक ऐसे प्रावधान किए गए हैं जिससे मानव अधिकार सुरक्षित है। इसके लिए विभिन्न प्रकार की समितियाँ, आयोग, अध्यादेश, अधिनियम तथा अन्य प्रकार के संवैधानिक प्रावधान भी किए गए हैं। मानव अधिकार का हनन मानव द्वारा ही किया जाता है, चाहे वह व्यक्ति दबंग हो या सरकारी लोक सेवक। इसमें विभाग या कुर्सी से कोई मतलब नहीं होता। साधारण से साधारण व्यक्ति को स्वतंत्र भारत का डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा रचित संविधान हर नागरिक के मूलभूत अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी देता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को अपनी मानवीय गरिमा से जीने का अधिकार है। इसके तहत प्रत्येक मानव को गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत करने के साथ-ही-साथ सभी जीवनोपयोगी कार्य स्वतंत्र रूप से करने का वैधानिक प्रावधान है। स्वतंत्रता से हर जगह मानव अधिकारों की समुचित व्यवस्था है। हमारा समर्थन उन्हीं को है जो इन अधिकारों को पाने के लिए या बनाए रखने के लिए संघर्ष करते हैं। 10 दिसंबर, 1948 को विश्व मानव अधिकार की घोषणा हुई। इस तरह से देखा जाए तो मानव जीवन सरल होता है किंतु मानव के बीच में आपसी उलझन और समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती है। विवेक एस.राज ने ठीक ही कहा है, "जीवन सरल है सपाट है तेरे तुम हो सारी उलझन ओके सर जब तुम हो अपने भीतर झाँक कर देखो सब नियत का फेर है राह चारों और दिखेगी फिर उन पर चल कर देखो।"[4] स्पष्ट है कि मानव अधिकार की रक्षा के लिए मानव को ही आगे आना होगा।

प्रस्तावना

मानव जीवन की वास्तविकता और इसकी ऐतिहासिकता पर दृष्टि डालें तो यह निश्चित है कि प्रकृति के द्वारा मनुष्य को विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, लेकिन इन शक्तियों का स्वयं अपने और समाज के हित में उचित रूप से प्रयोग करने के लिए कुछ बाहरी सुविधाओं की आवश्यकता होती है। राज्य का सर्वोत्तम लक्ष्य राज्य के व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है, इस प्रकार राज्य के द्वारा व्यक्ति को ये सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं और राज्य के द्वारा व्यक्ति को प्रदान की जाने वाली इन बाहरी सुविधाओं का नाम ही अधिकार है।

व्यक्ति और राज्य के पारस्परिक संबंधों की समस्या सदा से ही बहुत अधिक जटिल रही है और वर्तमान समय की प्रजातंत्रीय व्यवस्था में इस समस्या ने विशेष महत्त्व प्राप्त कर लिया है। वर्तमान समय में ऐसा माना जाता है कि राज्य की शक्ति पर ऐसे नियंत्रण स्थापित किए

जाने चाहिए जिससे राज्य नागरिकों पर शक्ति का प्रयोग न कर सके। राज्य की शक्ति पर ऐसे प्रतिबंध मूल अधिकारों के माध्यम से ही लगाए जा सकते हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर फ्रांस, अमेरिका आदि देशों के संविधान में मूल अधिकारों को स्थान दिया गया है। भारतीय संविधान सभा के सदस्यों ने ब्रिटिश शासन के अत्याचार प्रत्यक्ष रूप में देखे थे और बहुतों के द्वारा इन अत्याचारों की भयानकता स्वयं अनुभव की गई थी। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक रूप से उनके द्वारा यह सोचा गया कि ऐसी व्यवस्था स्थापित कर दी जानी चाहिए, जिससे अब शासन जनता पर इस प्रकार के अत्याचार न कर सके। भारत में प्रजातंत्र नया-नया ही स्थापित किया जा रहा था, इस कारण भी नागरिकों के अधिकारों को विधानमंडल की इच्छा पर छोड़ना उचित नहीं समझा गया। इस संबंध में डॉ. अंबेडकर ने कहा, "भारत में इन अधिकारों को विधान मंडलों या सरकार की इच्छा पर छोड़ देना उचित नहीं था, क्योंकि भारत में लोकतंत्र अब तक पूर्ण रूप से पनप नहीं पाया है, इसलिए इन अधिकारों को संविधान में रख दिया गया।"[5] इसी प्रकार के व्यवस्था से ही मूल अधिकार नागरिकों के कल्याण, न्याय और उचित व्यवहार की सुरक्षा प्रदान करते हुए उन्हें विकास के लिए स्वतंत्र वातावरण प्रदान कर सकता है। इसी स्थिति के आधार पर अतिरिक्त मुख्य न्यायाधीश श्री पातंजलि शास्त्री ने कहा था, "मूल अधिकारों की यह मुख्य विशेषता है कि वे राज्य द्वारा पारित विधियों से ऊपर हैं।"[6]

'भारत का संविधान और मूल अधिकार' विषय पर शोध करते हुए वर्तमान परिपेक्ष्य की जब हम बात करते हैं तो आज मानव अधिकार की अवधारणा महत्त्वपूर्ण हो गई है। मानव अधिकार आंदोलन की उपादेयता तभी है, जब समाज के सभी नागरिकों को मानव अधिकार उपलब्ध हों। मानव अधिकार का मूल मकसद यह होना चाहिए कि समाज से सभी प्रकार के भेदभाव का अंत हो। वर्तमान राजनैतिक तंत्र राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम नहीं हो पा रहा है। भारत के संदर्भ में जिन मूल्यों के आधार पर स्वतंत्रता आंदोलन चलाया गया, उसकी अत्यंत आवश्यकता है। वे मूल्य विश्लेषण और विकास के लिए उचित ढाँचा प्रदान करते हैं। वर्तमान में पाश्चात्य विचारों के समागम ने मानव चेतना को झकझोर दिया है। भारत ने सभी उत्तम विचारों को विवेकपूर्ण दृष्टि से स्वीकार करते हुए एक राजनैतिक तंत्र विकसित किया है और संविधान निर्माता भी यह महसूस करते थे कि बुनियादी मानव अधिकार के बिना प्राप्त की गई स्वतंत्रता बेइमानी है। इसलिए भारतीय संविधान में मानव अधिकारों को वैधानिक दर्ज़ा प्रदान किया गया है। नागरिक स्वतंत्रता के लिए भारत के कर्णधारों ने प्रारंभ से ही ध्यान देना शुरू कर दिया था और इसी के तहत भारत में मानव अधिकारों को शुरू से ही महत्त्व दिया जाता रहा है।

की-वर्ड

संविधान, मानव अधिकार, दृष्टिकोण, वैधिक, प्रजातांत्रिक, राजनीतिक, संवैधानिक, सर्वांगीण, प्रावधान, उपबंध, अधिनियम, अध्यादेश, परमादेश, बंदी प्रत्यक्षीकरण, आयोग, मंडल,

हनन, नागरिक, चार्टर, प्रजातंत्र, अत्याचार, विधानमंडल, सरकार, अनुसंधान, अभिविन्यास, प्रतिनिधि, संकटकालीन, न्यायालय।

मानव अधिकार का अभिप्राय

साधारण अर्थ में देखें तो मानव अधिकार मनुष्य के विकास से संबंधित कुछ ऐसे विशेष अवसर का परिचायक है जिससे व्यक्ति अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है। अधिकार का अभिप्राय राज्य द्वारा व्यक्ति को दी गई कुछ कार्य करने की स्वतंत्रता या सकारात्मक सुविधा प्रदान करना है जिससे व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक शक्तियों का पूर्ण विकास कर सके। इस आधार पर देखें तो मानव अधिकार मानव समाज में रहने वाले मनुष्य के द्वारा मनुष्य को प्रदान किया गया उचित अवसर है।

अधिकार की परिभाषाएँ

अधिकार के संबंध में सामान्य अर्थ जान लेने के उपरांत यह आवश्यक है कि अधिकार के बारे में दिए गए कुछ विद्वानों की परिभाषा को जाने।

लॉस्की के अनुसार, "अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं जिनके अभाव में सामान्यतया कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता है।"[7]

बोसांके के अनुसार, "अधिकार वह माँग है जिसे समाज स्वीकार करता है और राज्य लागू करता है।"[8]

भारतीय विद्वान श्रीनिवास शास्त्री के अनुसार, "अधिकार समुदाय के क़ानून द्वारा स्वीकृत वह व्यवस्था, नियम या रीति है जो नागरिक के सर्वोच्च नैतिक कल्याण में सहायक है।"[9]

अधिकार के आवश्यक लक्षण

अधिकार के बिना मानव का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। मानव के अस्तित्व के साथ-साथ उसके सर्वांगीण विकास के लिए अधिकार का होना जरूरी है। यदि हम अधिकार के आवश्यक गुण को देखें तो कह सकते हैं कि अधिकार निम्न गुणों से परिपूर्ण होता है --

1. अधिकार सामाजिक स्वीकृति पर आधारित होता है।
2. अधिकार कल्याणकारी स्वरूप को धारण किए हुए होता है।
3. अधिकार को राज्य द्वारा संरक्षण प्राप्त होता है।
4. अधिकार सामूहिक हित से संबंधित होता है।
5. अधिकार समाज में सार्वभौमिकता के साथ लागू किया जाता है।

भारतीय संविधान की उत्पत्ति एवं मूल लक्षण

दुनिया के हरेक स्वाधीन राष्ट्र का अपना एक संविधान होता है जिसके अनुसार उस राष्ट्र की शासन-व्यवस्था का संचालन होता है। वही संविधान राष्ट्रीय विकास में भरपूर योगदान दे सकता है जिसे उस राष्ट्र की जनता ने स्वयं बनाया हो अथवा जिसे उस देश की संविधान-निर्मात्री

सभा द्वारा बनाया गया हो। संविधान-निर्मात्री सभा द्वारा संविधान का निर्माण स्वाधीन राष्ट्र का लक्षण है। अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संविधान निर्माण के अधिकार की माँग का सीधा संबंध 'स्वाधीनता की माँग' से ही है। भारतीय संविधान को संविधान निर्मात्री सभा ने बनाया है। संविधान सभा के अस्थायी अध्यक्ष सच्चिदानंद सिन्हा थे तथा बाद में राजेंद्र प्रसाद को इसका स्थायी अध्यक्ष बनाया गया था। भारतीय संविधान निर्माण में दो प्रकार की समितियाँ बनाई गई थी। इसमें प्रकार की समिति में प्रक्रिया समिति, वार्ता समिति, संचालन समिति एवं कार्य समिति तथा दूसरे प्रकार की समितियों में संविधान समिति, प्रांतीय संविधान समिति, संघ शक्ति समिति, मूल अधिकारों और अल्पसंख्यकों संबंधी समिति, झंडा समिति तथा प्रारूप समिति। संविधान सभा में कुल 389 सदस्य थे। संविधान को बनने में 2 वर्ष, 11 महीना और 18 दिन का समय लगा। भारत का संविधान 26 नवंबर, 1949 को बनकर पूर्णतः तैयार हो गया था जिसे 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया। भारतीय संविधान निर्माताओं को इस बात का अहसास था कि उन्हें भारत जैसे विशाल और विविधताओं से परिपूर्ण देश के लिए एक ऐसे संविधान का निर्माण करना है जो भारत की विशेष परिस्थितियों और संकट की घड़ियों में सफलतापूर्वक चलाया जा सके। इसलिए उन्होंने सिद्धांतवादिता के आधार पर एक 'मौलिक संविधान' का निर्माण करने की इच्छा करने के बजाय एक व्यावहारिक संविधान का निर्माण करने की बात सोची। संविधान सभा के प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ.अंबेडकर ने स्पष्टतया स्वीकार किया था कि "हमारे संविधान में यदि कोई नवीन बात हो सकती है, तो यही कि उसमें पुराने प्रचलित संविधानों की गलतियों को दूर कर दिया जाए और उसे देश की ज़रूरतों के अनुसार ढाला जाए। उधार लेने में किसी तरह की साहित्यिक चोरी नहीं है। शासन और विधान के बुनियादी सिद्धांत के बारे में किसी का कोई एकाधिकार नहीं होता है।"[10]

मानव अधिकार की आवश्यकता एवं उपयोगिता

मानव अधिकार की शुरुआत ही होती है मानव जीवन के साथ और मानव जीवन के साथ जुड़ी है -- मानवीय गरिमा से। केवल मानव कहने भर से जिस गरिमामय व्यक्तित्व का आभास होता है, उसमें शामिल है -- स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन और सुअवसरों की उपलब्धता और अधिक स्पष्ट करें तो हर मानव (स्त्री, पुरुष बच्चे) को स्वस्थ रहने लायक भोजन, तन-मन की पूरी क्षमता भर का, आवास, चिकित्सा सुविधा, शिक्षा व सामाजिक विकास के अनुकूल अवसरों की समान रूप से उपलब्धता और सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए मानव अधिकार की आवश्यकता पड़ती है। स्वतंत्र भारत का संविधान हर नागरिक के मूलभूत अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी देता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को अपनी मानवीय गरिमा का अधिकार सुनिश्चित करता है। इसके तहत प्रत्येक मानव को गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत करने के साथ कुछ न्यूनतम आवश्यकताएँ अनिवार्य हैं, जिसमें मज़दूरों

(स्त्री पुरुष) के स्वास्थ्य एवं शक्ति तथा बच्चों के शोषण के विरुद्ध संरक्षण के साथ बच्चों को स्वस्थ रूप से विकसित होने के साथ-साथ स्वतंत्रता एवं गरिमा का माहौल बनाए रखना, समान शिक्षा का अवसर प्रदान करना तथा मातृत्व सुविधा प्रदान करने के लिए न्यायपूर्ण एवं मानवोचित परिवेश बनाना चाहिए। इन सभी बातों को देखें तो स्पष्ट होता है कि मानव अधिकार की आवश्यकता मानव कल्याण हेतु है।

संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार

भारतीय संविधान के भाग 3 द्वारा नागरिकों को 7 मूल अधिकार प्रदान किए गए थे, किंतु 44वें संवैधानिक संशोधन (1979) द्वारा संपत्ति के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में समाप्त कर दिया गया है। बाद में 2002 में पुनः प्रारंभिक शिक्षा को मूल अधिकार में शामिल किया गया है जिसे संविधान के 86वें संविधानिक संशोधन के द्वारा प्रदान किया गया। वर्तमान में भारतीय संविधान द्वारा भारतीयों को 7 मूल अधिकार प्राप्त हैं।

1. समानता का अधिकार -- अनुच्छेद 14 से 18 तक।
2. स्वतंत्रता का अधिकार -- अनुच्छेद19 से 22 तक।
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार -- अनुच्छेद 23 से 24 तक।
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार -- अनुच्छेद 25 से 28 तक।
5. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार -- अनुच्छेद 29 से 30 तक।
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार -- अनुच्छेद 32
7. प्रारंभिक शिक्षा का मूल अधिकार -- अनुच्छेद 21ए

विभिन्न अनुच्छेदों में दिए गए उपरोक्त मूल अधिकार से भारतीयों को अनेक अवसर प्राप्त होते हैं, जैसे; क़ानून के समक्ष समानता, सामाजिक समानता, सरकारी पदों की प्राप्ति के लिए अवसर की समानता, अस्पृश्यता का अंत, उपाधियों का अंत, विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अस्त्र-शस्त्र रहित तथा शांतिपूर्ण सम्मेलन की स्वतंत्रता, समुदाय और संघ निर्माण की स्वतंत्रता, भ्रमण की स्वतंत्रता, निवास की स्वतंत्रता, व्यवसाय की स्वतंत्रता, क़ानून का उल्लंघन न होने तक दंड से स्वतंत्रता, मनुष्य के क्रय-विक्रय और बेगार पर रोक, बाल श्रम अर्थात् बच्चों को कारखानों आदि में नौकर नहीं रखा जा सकता, धार्मिक आचरण और प्रचार की स्वतंत्रता, धार्मिक मामलों के प्रबंध की स्वतंत्रता, धार्मिक कार्यों के लिए की जाने वाली राशि को कर्म से मुक्ति, शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने या न करने की स्वतंत्रता, अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति सुरक्षित रखने की स्वतंत्रता, अल्पसंख्यक वर्गों की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना व प्रशासन का अधिकार, बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेष्ण, अधिकार पृच्छा संबंधी संवैधानिक उपचार का अधिकार प्राप्त है। उपरोक्त अधिकारों में संवैधानिक उपचार के अधिकार से संबंधित अनुच्छेद 32 के संबंध में डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि ''यह संविधान का हृदय तथा आत्मा है।''[11]

मानव अधिकार की रक्षा में विशेष प्रयास

पिछले लगभग कई दशकों से भारत में कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'एमनेस्टी इंटरनेशनल' तथा अन्य कुछ मानव अधिकार समर्थकों द्वारा यह कहा जा रहा था कि भारतीय संविधान में 'मूल अधिकारों का प्रावधान' होने के बावजूद व्यवहार में राजसत्ता से जुड़ी विविध एजेंसियों (राज्य के पुलिस बल, अर्ध सैनिक बल, सेना और जेल-व्यवस्था, आदि) द्वारा अनेक बार मूल अधिकारों का हनन किया जाता है। अतः यह अनुभव किया गया कि नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए। अतः दिसंबर, 1993 में 'मानव अधिकार आयोग व न्यायालय' गठन संबंधी विधेयक पारित किया गया।

वर्ष 1993 में माननीय उच्चतम न्यायालय के प्रयास से मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम पारित किया गया। हमारी गणतंत्र सरकार ने मानव अधिकारों की रक्षा और इनके बारे में जागरुकता फैलाने के उद्देश्य से सितंबर, 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन राष्ट्रपति के एक अध्यादेश द्वारा किया। इसके एक वर्ष बाद ही वर्ष 1994 में एक अधिनियम पारित कर राज्यों में मानव अधिकार आयोग की स्थापना का प्रधान किया गया। यह आयोग मानव अधिकारों के हनन और उल्लंघन के मामलों की जाँच स्वयं या किसी के द्वारा शिकायत किए जाने पर करता है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का मुख्यालय दिल्ली में है। इस आयोग के अध्यक्ष पद पर माननीय उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को नियुक्त जाता है तथा अन्य सदस्य भी न्यायाधीश ही होते हैं। आयोग को मानव अधिकारों के हनन दुरुत्साहन और मानव अधिकारों के हनन की रोकथाम में सरकारी कर्मचारियों की उपेक्षा की सभी शिकायतों पर विचार करने का अधिकार होता है। वर्तमान में देखें तो 'राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग', 1994 के प्रारंभिक दिनों से ही अपना कार्य आरंभ कर दिया है। 'टाडा' क़ानून की समाप्ति और बाल श्रम का निषेध करने की बात पर बल देने में इस आयोग का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है तथा अपने कार्यकाल में आयोग ने मानव अधिकारों की रक्षक संस्था के रूप में अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। अद्यतन इसके अतिरिक्त मानव अधिकार संरक्षण से संबंधित कार्यो के लिए ग़ैर-राजनीतिक संगठन भी सामने आए हैं। मीडिया तथा अनेक संस्थानों ने भी मानव अधिकार हनन को रोकने के लिए बेहतर प्रयास किया है।

आरक्षण व्यवस्था एवं समानता का मौलिक अधिकार

एस.के. विश्वास कहते हैं कि "उस देश या समाज पर जहाँ की एक वर्ग विशेष को लंबे समय से चली आ रही भेदभावपूर्ण व्यवस्था ने गंभीर रूप से अपंग बना दिया हो, समानता का सिद्धांत थोपना भी भेदभावपूर्ण होगा जब तक कि अपंग बनाने वाली व्यवस्था को ही समाप्त न कर दिया जाए।"[12] समानता के अधिकार को भारतीय संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। आरक्षण व्यवस्था का प्रश्न उठते ही समानता का मौलिक अधिकार सामने आ जाता है। आरक्षण विरोधी कहते हैं कि एक ओर तो भारतीय संविधान

समानता की बात करता है, समानता के अधिकार को मौलिक अधिकारों में सर्वप्रथम स्थान देता है, वहीं जाति आधारित आरक्षण व्यवस्था के द्वारा संविधान मनुष्य-मनुष्य में जाति के आधार पर भेदभाव करता है।जाति के आधार पर किसी भी एक वर्ग को विशेष अधिकार देना समानता के मौलिक अधिकार का अतिक्रमण है। वास्तव में समानता के अधिकार के आधार पर आरक्षण व्यवस्था का विरोध कोई नई बात नहीं है। यह विरोध संविधान के लागू होते ही प्रारंभ हो गया था। विरोध न्यायपालिका तक पहुँच गया था और अंततः संसद को भारतीय संविधान में प्रथम संशोधन करके अनुच्छेद 15 में उपबंध 15 (4) डालकर इस विरोध को अवैध करार देना पड़ा। इस अनुच्छेद में स्पष्ट कहा गया है कि "इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्ही वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए कोई विशेष प्रावधान बनाने से नहीं रोकेगी।"[13]

इसी प्रकार से अनुच्छेद 16 (4) में कहा गया है कि "इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्ति या पदों के आरक्षण के लिए विशेष प्रावधान करने से नहीं रोकेगी।"[14] इस प्रकार देखें तो यह सत्य है कि स्वस्थ लोकतंत्र का आधार नागरिकों की समानता ही है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि जिस प्रकार एक मशीन सभी के साथ व्यवहार करती है, उसी प्रकार राज्य भी सभी के साथ समान व्यवहार करे (मशीन की भाँति), भले ही वे आपस में असमान हो, उनकी सामाजिक स्थिति में कितना ही अंतर क्यों न हो। समानता के मौलिक अधिकार का अर्थ आसमान व्यक्तियों को समान मानना नहीं है। व्यक्ति अपनी क्षमता, संसाधन, परिस्थितियों और आवश्यकताओं के आधार पर आपस में असमान हो सकते हैं। भारत की सामाजिक स्थिति ऐसी है कि देश के बहुसंख्यक एस.सी., एस.टी., ओ. बी.सी. को पिछले चार हज़ार वर्षों से जातिगत भेदभाव के आधार पर शोषण का शिकार बनाया गया है। ऐसे में यदि राज्य इनमें और दूसरी अगड़ी जातियों में अंतर न करके सबके साथ एक मशीन की भाँति समान व्यवहार करता है तो राज्य का यह कार्य देश के इस पीड़ित वर्ग के साथ न्याय पर नहीं अन्याय पर आधारित कार्य होगा।

निष्कर्ष एवं सुझाव

यह कहा जा सकता है कि ''आज़ादी के पश्चात् भारतीय संविधान में नागरिकों के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए ठोस प्रावधान किए गए तथा उन्हें न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का दर्ज़ा प्रदान किया गया। भारतीय एवं वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखने पर मानव अधिकार की विभिन्न समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं जिनमें प्रमुख नस्लीय भेदभाव, धार्मिक अधिकार, भाषाई अधिकार, लिंग भेद, पुलिस अत्याचार आदि जो मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के कारण उत्पन्न हुई है। वर्तमान युग में मानव अधिकार उल्लंघन की कई घटनाएँ घटित हो

रही हैं। भारतीय परिपेक्ष्य में दलितों पर अत्याचार, बड़ी परियोजनाओं के कारण लोगों के विस्थापन, प्राकृतिक आपदा से प्रभावित लोगों की मूलभूत सुविधा उपलब्ध कराने संबंधी समस्या, बच्चों के साथ अमानवीय बर्ताव, बच्चों की वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य करना, कई राज्यों में आतंकवादी गतिविधियों, जेल में बलात्कार तथा उत्पीड़न, महिला हिंसा, बंधुआ मज़दूरी, अल्पसंख्यकों के प्रति किया जाने वाला अत्याचार एवं धार्मिक सहिष्णुता के प्रश्न जुड़े हुए हैं।

वस्तुतः देखे तो मानव अधिकारों की रक्षा करने की दिशा में ग़ैर-सरकारी संगठन ही अधिक प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं। उनसे जिस प्रकार के व्यापक दृष्टिकोण और निष्पक्षता तथा निर्भयता की आशा की जा सकती है, सरकारी संगठनों के लिए उसे अपना पाना संभव नहीं है। जन जागरूकता और ग़ैर-सरकारी संगठनों के निरंतर बढ़ती हुई सक्रियता के आधार पर आगे आने वाले समय में मानव अधिकारों के प्रसंग में अधिक संतोषजनक स्थिति की आशा की जा सकती है। मानव अधिकार की सुरक्षा के संदर्भ में मनुष्य को अपने कर्त्तव्यों का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है। जैसाकि प्रो. गोल्ड ने कहा है, "हमारा एकमात्र अधिकार अपने कर्त्तव्यों का पालन है।"[21] महात्मा गांधी के शब्दों में कहा जा सकता है कि "कर्त्तव्य का पालन कीजिए और अधिकार स्वतः ही आपको मिल जाएँगे।"[22] भारत में मानव अधिकार और भारतीय संविधान के प्रति अधिक जागरूकता के लिए निम्नांकित सुझाव प्रमुख हैं --

1. भारतीय संविधान के आधारभूत संरचनाओं को समझने के लिए शिक्षा का प्रचार प्रसार किया जाना चाहिए।
2. भारतीय संविधान में उल्लेखित समस्त प्रावधानों विशेषतया मूल अधिकारों की जानकारी के लिए जन जागरूकता अभियान चलाई जानी चाहिए।
3. भारतीय संविधान के प्रति लोगों में उत्साह जागृत कराने हेतु कार्यक्रम चलाई जानी चाहिए।
4. भारतीय संविधान में उल्लेखित समस्त प्रावधानों एवं व्यवस्थाओं को अक्षरशः लागू किया जाना चाहिए।
5. भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार पर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर का संगोष्ठी एवं कार्यशाला आयोजित किया जाना चाहिए।
6. भारतीय संविधान की प्रतियाँ देश के प्रत्येक घर में पहुँचाया जाना चाहिए।
7. भारतीय संविधान के अनुरूप ही शासन के कार्यक्रमों को जनकल्याणकारी रूप में किया जाना चाहिए।
8. भारतीय संविधान से संबंधित फ़िल्मों का निर्माण एवं प्रदर्शन किया जाना चाहिए।
9. भारतीय संविधान से संबंधित कार्यक्रमों का प्रसारण टेलीविजन के माध्यम से किया जाना चाहिए।
10. भारतीय संविधान में उल्लेखित मूल अधिकार से संबंधित चित्र प्रदर्शनी का आयोजन किया जाना चाहिए।

11. भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार से संबंधित साहित्य का सृजन अधिक मात्रा में किए जाने चाहिए।
12. भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार से संबंधित प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना किया जाना चाहिए।
13. भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार समितियों का गठन देश के सभी जिलों में किया जाना चाहिए।
14. भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार से संबंधित विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाना चाहिए।
15. भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार से संबंधित प्रशिक्षण संस्थान खोला जाना चाहिए।
16. भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार से संबंधित नुक्कड़ नाटक गाँव-गाँव में प्रदर्शित किया जाना चाहिए।
17. भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार से संबंधित वाचनालय हर एक पंचायत में स्थापित किया जाना चाहिए।
18. भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार संबंधी प्रचार प्रसार विश्व स्तर पर किया जाना चाहिए।

❑

संदर्भ ग्रंथ सूची

1-1. जैन डॉ. पुखराज, 'यूनिफाइड राजनीति विज्ञान', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, सत्र-2008, पृ. 128

3. अंबेडकर डॉ. भीमराव, 'भारत का संविधान', प्रबुद्ध भारत पुस्तकालय और प्रकाशन व्यवसाय, वैशाली नगर रोड, नागपुर, सत्र-2017, पृ. 8

4. एस.राज विवेक, 'समकालीन भारतीय मुद्दे (समस्या एवं समाधान)', सिविल सर्विसेज टाइम्स, नई दिल्ली, सत्र-2014-15, पृ. 03

5. जैन डॉ. पुखराज, 'यूनिफाइड राजनीति विज्ञान', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, सत्र 2008, पृ. 24, 6. पूर्ववत, पृ. 24

7. जैन पुखराज, 'यूनिफाइड राजनीति विज्ञान', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 128

8. पूर्ववत, पृ. 128 9. पूर्ववत, पृ. 128, 10. पूर्ववत, पृ. 142, 11. पृ. 31

12-13. एस. कुमार, 'आरक्षण भिख नहीं प्रतिनिधित्व', मूल निवासी बहुजन प्रकाशन, पृ. 37

14. जैन डॉ. पुखराज, 'यूनिफाइड राजनीति विज्ञान', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, सत्र-2008, पृ. 142

सन्तोष खन्ना

मानव अधिकार और भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993

मानव अधिकारों की अवधारणा 'स्वाभाविक न्याय' और मानव के 'मूल अधिकारों और स्वतंत्रताओं' पर आधारित है। सभी मनुष्यों को समान अधिकार मिलें, मानव एक गरिमामय जीवन व्यतीत कर सके, इसके लिए यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि प्रत्येक मानव को बिना किसी भेदभाव सभी प्रकार के मानव अधिकार मिलें। वैसे तो मानव अधिकारों का इतिहास बहुत पुराना है परंतु मानव अधिकारों की वर्तमान व्यवस्था का आरंभ तब हुआ जब द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वर्ष 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई। उस समय के युद्धग्रस्त देशों ने यह महसूस किया कि युद्ध के कारण बहुत विनाश हो लिया और मानव के लिए बहुत सारी समस्याओं पैदा कर दी गई हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शांति स्थापना के लिए कोई ऐसी कारगर संस्था बनाई जाए जो मानव अधिकारों का संरक्षण और संवर्धन कर सके। जब वर्ष 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई तो उस समय विश्व के पचास देश इस के लिए भागीदारी कर रहे थे जिन में भारत भी एक सदस्य देश था।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी स्थापना के एक वर्ष बाद 1946 में अलनोर रूजवेल्ट की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया कि वह उस समय विश्व में मानव अधिकारों की स्थिति का मूल्यांकन कर रिपोर्ट महासभा को प्रस्तुत करें। मानव अधिकार समिति की प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर वर्ष 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों का एक चार्टर बनाया जो मानव अधिकारों के लिए एक मील का पत्थर साबित हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 10 दिसंबर, 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का प्रस्ताव पारित कर उसे लागू कर दिया। जब संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में मानव अधिकार की सार्वभौमिक घोषणा संबंधी प्रस्ताव पारित हुआ तो महासभा के तत्कालीन अध्यक्ष ने सही ही कहा था :--

'यह प्रथम अवसर है जब संगठित राष्ट्रों ने मानव अधिकार और मूल स्वतंत्रताओं की घोषणा की है। इस प्रकार यह घोषणा मानव अधिकारों के संरक्षण की दिशा में एक क्रांतिकारी क़दम है।'

इस घोषणा के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ हर वर्ष 10 दिसंबर को अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार

दिवस के रूप में मनाता है। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की प्रस्तावना में कहा गया कि 'संयुक्त राष्ट्र संघ के हम सभी व्यक्ति निश्चय करके छोटे-बड़े राष्ट्रों और स्त्री पुरुष के समान तथा आधारभूत अधिकारों के संरक्षण के लक्ष्य को सामूहिक प्रयासों से पूरा करेंगे।' वर्ष 1948 से लेकर अब तक संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व में मानव अधिकारों को लागू करने के लिए सक्रिय है और विश्व के सभी देश अपने यहाँ सुनिश्चित करने का प्रयास करते हैं कि उनकी जनता के मानव अधिकारों का उल्लंघन न हो और सभी के मानव अधिकार सुरक्षित रहें। संयुक्त राष्ट्र संघ के अब तक विश्व के देशों की सदस्य संख्या बढ़कर 193 हो चुकी है अर्थात् समूचा विश्व संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार घोषणा के क्षेत्र में आ चुका है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की मानव अधिकार संबंधी सार्वभौमिक घोषणा को लागू हुए अब तक 10 दिसंबर, 2023 को लगभग 75 वर्ष हो जाएँगे अर्थात् संयुक्त राष्ट्र संघ चाहे तो मानव अधिकारों संबंधी अमृत महोत्सव मना सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की मानव अधिकारों की घोषणा में 30 खंड है जिनमें सिविल और राजनीतिक अधिकार तथा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मानव अधिकार शामिल हैं।

भारत के संविधान का निर्माण

जब वर्ष 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व में मानव अधिकारों का मूल्यांकन करने के संबंध में क़दम उठा रहा था तो उसी वर्ष भारत में स्वतंत्र भारत के लिए एक नया संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा का गठन किया गया था। संविधान सभा ने भारत के नये संविधान का निर्माण करते समय संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा में सम्मिलित लगभग सभी मानव अधिकारों को संविधान में शामिल कर लिया। भारत के संविधान में समानता, स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता, मानव जीवन की गरिमा जैसे महत्त्वपूर्ण मानव अधिकारों को भारत के संविधान के अध्याय 3 में मूल अधिकारों के रूप में शामिल कर लिया और सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मानव अधिकारों को भारत के संविधान के अध्याय 4 में राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के रूप में शामिल कर लिया गया। मूल अधिकारों में उपचार संबंधी मूल अधिकार भी शामिल कर लिया गया जो संविधान के अनुच्छेद 32 में है जिसमें यह प्रावधान है कि यदि किसी नागरिक के मूल अधिकार का उल्लंघन होता है तो वह राज्य के विरुद्ध देश की उच्चतम न्यायिक संस्था उच्चतम न्यायालय में सीधे जा सकता है और अपने मूल अधिकार सुरक्षित करा सकता है। इस प्रकार, भारत के संविधान में मूल अधिकारों में उन्हें लागू करवाने के लिए उपचारात्मक उपाय से मूल अधिकारों की सार्थकता बढ़ी है। कह सकते हैं कि 'देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार उच्चतम न्यायालय ने इस उपचार के माध्यम से मूल अधिकारों को मानव के हित में निर्वचन करते हुए विधि के समक्ष समानता एवं समान संरक्षण तथा व्यक्ति के प्राण एवं देह की गरिमा जैसे महत्त्वपूर्ण अधिकारों को मान्यता प्रदान की है जो विधिक इतिहास में सराहनीय क़दम है।

भारत के संविधान के अध्याय 3 और 4 दोनों में मानव अधिकार ही दिए गए हैं परंतु मूल अधिकार और राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में मूलभूत अंतर यह है कि नीति निदेशक तत्त्वों के उल्लंघन पर नागरिक सीधे उच्चतम न्यायालय में नहीं जा सकता। भारत के संविधान में मानव अधिकारों को दो हिस्सों में बांटने के पीछे की उस समय के संविधान निर्माताओं की मंशा यही थी कि भारत देश अभी नया-नया आजाद हुआ है उस समय देश के पास इतने वित्तीय संसाधन नहीं थे कि हर नागरिक के सभी मानव अधिकारों को संरक्षित किया जा सके। इस का यह अर्थ नहीं है कि राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों का कोई महत्त्व नहीं है। किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण में मौलिक अधिकार तथा नीति निर्देशक तत्त्व महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्य के नीति निदेशक तत्त्व जनतांत्रिक संवैधानिक विकास के नवीनतम आधार हैं।

राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि राज्य के शासन में इनकी मूलभूत भूमिका रहेगी। उच्चतम न्यायालय नै राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में से कई तत्त्वों को मूल अधिकारों की संज्ञा दे दी है। इस संदर्भ में शिक्षा के अधिकार की चर्चा करना न्यायसंगत होगा।

इस बात को उदाहरण के रूप में हमें इसे यूँ समझ सकते हैं कि शिक्षा का अधिकार संविधान निर्माण के समय मूल अधिकारों में न रखकर उसे राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में शामिल कर लिया गया था। शिक्षा का अधिकार राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में अनुच्छेद 45 में शामिल करते हुए कहा गया था कि राज्य दस वर्षो के भीतर देश के 6 वर्ष से 14 वर्ष के बच्चों को अनिवार्य एवं मुफ़्त शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा। अब उस शिक्षा संबंधी नीति निदेशक तत्त्व को उच्चतम न्यायालय ने मूल अधिकार का दर्ज़ा दे दिया है। अब शिक्षा का अधिकार मूल अधिकार बन चुका है। इसके लिए भारत की संसद ने संविधान में संशोधन कर इसे मूल अधिकारों में अनुच्छेद 21क के रूप में शामिल कर लिया है जिसका अर्थ यह है कि अब शिक्षा के अधिकार के उल्लंघन की स्थिति में नागरिक उच्चतम न्यायालय में सीधे याचिका फाइल कर सकते हैं और शिक्षा का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

भारत ने संविधान प्रदत्त मानव अधिकार और अधिक संरक्षित करने की दृष्टि से वर्ष 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया था। इसका गठन पेरिस सिद्धांतों के अनुरूप है जिन्हें अक्तूबर, 1991 में पेरिस में मानव अधिकार संरक्षण एवं संवर्धन के लिए राष्ट्रीय संस्थानों पर आयोजित पहली अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला में अंगीकृत किया गया था तथा 20 दिसंबर, 1993 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा संकल्प 48/134 के रूप में समर्थित किया गया।

इस प्रकार जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए विश्व के सभी सदस्य देशों से संघीय और राज्य स्तर पर मानव अधिकार संबंधी मानव अधिकार आयोग बनाने के लिए कहा तो वर्ष 1993 में भारत सरकार तुरंत एक अध्यादेश

लेकर आई जिसके अंतर्गत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन कर दिया गया और तत्कालीन सेवानिवृत्त भारत के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र को इसका अध्यक्ष बना दिया गया। वर्ष 1994 में भारत की संसद ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993 पारित कर इस आयोग को वैधानिक दर्ज़ा दे दिया। इस अधिनियम के अंतर्गत राज्य स्तर पर भी मानव अधिकार आयोगों के गठन का प्रावधान कर दिया गया है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग मानव अधिकारों का बेहतर संरक्षण एवं संवर्धन के लिए एक ऐसा संस्थान है जो न्यायपालिका का अनुपूरक है और देश में लोगों के मानव अधिकारों की रक्षा और समर्थन में लगा हुआ है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993

अब राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग क़ानून को लागू हुए लगभग 30 वर्ष हो गए हैं इस समय भारत ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के साथ-साथ 28 राज्य मानव अधिकार आयोग बने हुए हैं और यह आयोग अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले लाखों मामले निपटाए चुके हैं और हर वर्ष इन मामलों में वृद्धि होती जाती है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार अधिनियम, 1993 की कुल 43 धाराएँ हैं जिन्हें 8 अध्याय में बाँटा गया है। इस अधिनियम की धारा 2 सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें अधिनियम में प्रयुक्त मुख्य शब्दावली की परिभाषाएँ दी गई हैं। धारा 2(घ) के अंतर्गत 'मानव अधिकार' शब्दावली की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि 'मानव अधिकार से जीवन, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से संबंधित ऐसे मानव अधिकार अभिप्रेत हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत किए गए हैं या अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निविष्ट हैं और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं।' इस अधिनियम के अनुसार मानव अधिकार का अर्थ है संविधान द्वारा गारंटीकृत तथा अंतरराष्ट्रीय संविदाओं में मानव अधिकार शामिल हैं और भारत में न्यायालयों द्वारा परिवर्तनीय हैं। जीवन, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति विशेष की गरिमा संबंधी अधिकार का अर्थ है अंतरराष्ट्रीय सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों संबंधी अंतरराष्ट्रीय संविदा, आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय संविदा, महिलाओं के प्रति होने वाले हर प्रकार के भेदभाव का उन्मूलन संबंधी संविदा, बच्चों के अधिकार संबंधी संविदा और हर प्रकार के जातीय भेदभाव का उन्मूलन संबंधी संविदा। भारत सरकार ने वर्ष 1979 में सिविल और राजनीतिक अधिकारों संबंधी अंतरराष्ट्रीय संविदा और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय संविदा को स्वीकार किया था। भारत सरकार ने वर्ष 1993 में महिलाओं के प्रति होने वाले हर प्रकार के भेदभाव का उन्मूलन संबंधी संविदा की पुष्टि कर दी थी। वर्ष 1991 में बच्चों के अधिकार संबंधी संविदा की पुष्टि कर दी थी। यहाँ यह आलेख करना उचित होगा कि भारतीय संविधान उन सभी बिंदुओं को ध्यान में रखता है जिनका उल्लेख इन संविदाओं में किया गया है। सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों संबंधी अंतरराष्ट्रीय संविदा

और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय संविदा में उल्लिखित कई अधिकार भारत के नागरिकों को उसी समय उपलब्ध हो गए थे जब भारत स्वतंत्र हुआ था क्योंकि यह सभी अधिकार प्रमुख रूप से भारत के संविधान के भाग 3 और भाग 4 में मौलिक अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत के तहत दिए गए हैं।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन का प्रावधान इस क़ानून की धारा 3 के अंतर्गत किया गया है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एक 5-सदस्य निकाय था अब यह छह सदस्यीय निकाय बन गया है। आयोग के अध्यक्ष के पद पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है जो उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रहा हो या न्यायाधीश रहा हो। वर्ष 2019 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993 में संशोधन करने से अब भारत के मुख्य न्यायाधीश के अलावा उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश भी आयोग का अध्यक्ष बनाया जा सकता है। आयोग का एक सदस्य ऐसा व्यक्ति होता है जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश रहा हो। एक सदस्य ऐसा व्यक्ति होता है जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रहा हो। शेष 2 सदस्य ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाते थे जो मानव अधिकार विषय के विशेषज्ञ हूँ अथवा उन्हें ऐसे मामले में कार्य करने का अनुभव प्राप्त हो। यहाँ यह ध्यातव्य है कि अब वर्ष 2019 के संशोधन के साथ इन दो सदस्यों की संख्या बढ़कर तीन हो गई है और इन तीन सदस्यों में से एक सदस्य अनिवार्यता एक महिला होगी। इस संशोधन के माध्यम से अनिवार्यतया महिला सदस्य को शामिल करने से महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में इसे एक अच्छा क़दम माना जा सकता है। इन छः सदस्यों के अतिरिक्त अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष भी राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के सदस्य माने जाएँगे। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि अब इन सदस्यों की संख्या भी बढ़ाई दी गई है क्योंकि अब पिछड़ा आयोग के अध्यक्ष, बाल अधिकार आयोग के अध्यक्ष तथा दिव्यांग आयोग के मुख्यायुक्त भी सद्स्य माने जाएँगे।

आयोग के सदस्यों की नियुक्ति एवं कार्यकाल

आयोग के सदस्यों की नियुक्ति एक समिति की सिफ़ारिश के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। इस चयन समिति का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है और उसके सदस्य लोकसभा अध्यक्ष, भारत सरकार के गृह मंत्रालय का प्रभारी मंत्री, लोक सभा में विपक्ष का नेता, राज्यसभा में विपक्ष का नेता तथा राज्य सभा का उपसभापति होता है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का मुख्यालय दिल्ली में है और इस आयोग को प्रत्येक वर्ष के वार्षिक प्रतिवेदन अथवा विशेष प्रतिवेदन केंद्र सरकार प्रस्तुत करने होते हैं और केंद्र सरकार इन प्रतिवेदनों को संसद में प्रस्तुत करती है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के सदस्यों का कार्यकाल पहले पाँच वर्ष तक या सत्तर

वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इन में से जो भी पहले हो, तक का होता था परंतु अब राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम में 2019 में संशोधन कर इस कार्यकाल की अवधि तीन वर्ष कर दी गई है और इन सदस्यों की पुनः नियुक्ति भी की जा सकती है शर्त यह है कि उनकी आयु सत्तर वर्ष से कम हो। आयोग के अध्यक्ष के बीमार होने अथवा अन्य किसी कारण के अनुपस्थित होने की स्थिति में सबसे वरिष्ठ सदस्य अध्यक्ष के कार्य संपन्न करता है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के कार्य और शक्तियाँ

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को धारा 12 के अंतर्गत मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए जो कार्य करने होते हैं उसके बारे में उसे निम्न शक्तियाँ प्रदान की गई हैं वह हैं :--

1. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग स्वप्रेरणा से या किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा या किसी न्यायालय के निर्देश अथवा आदेश पर उसके समक्ष प्रस्तुत अर्जी पर कार्यवाही करेगा। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी के मानव अधिकार का उल्लंघन या दुष्प्रेषण होता है तो राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को अपने आँख कान खुले रखने होंगे। यह नहीं कि उसकी कोई शिकायत उसके पास आए तो वह तभी कार्रवाई करेगा। वह प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर कड़ी नज़र रखेगा और यदि किसी के मानव अधिकार के उल्लंघन अथवा उसका दुष्प्रेषण का पता चलता है तो वह उसकी स्वप्रेरणा से उसकी जाँच कर उस पर कार्रवाई करेगा।
2. मानव अधिकार उल्लंघन अथवा उसका दुष्प्रेषण के बारे में किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी और व्यक्ति द्वारा अर्जी दी जाती है तो आयोग उसकी जाँच कर उस पर कार्रवाई करेगा।
3. किसी के मानव अधिकार के उल्लंघन अथवा दुष्प्रेरण की स्थिति में यदि उसे किसी न्यायालय का निर्देश अथवा आदेश मिलता है तो वह उस मामले की जाँच कर उस पर कार्रवाई करेगा।
4. यदि कोई लोक सेवक किसी व्यक्ति को मानव अधिकार दिलाने पर लापरवाही बरतता है उस मामले में आयोग जाँच कर कार्रवाई करेगा।
5. यदि किसी न्यायालय में मानव अधिकारों के हनन संबंधी आरोप का कोई मामला लंबित हो तो उस न्यायालय के अनुमोदन पर आयोग उसमें हस्तक्षेप कर सकेगा।
6. किसी राज्य की जेल अथवा किसी संस्थान में जहाँ लोगों को उपचार, सुधार अथवा संरक्षण प्रदान करने के लिए रखा जाता है वहाँ की स्थितियों का अध्ययन कर आयोग उस संबंध में सरकार को सिफ़ारिशें कर सकेगा।
7. भारत के संविधान के अंतर्गत प्रदत्त मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए रक्षोपायों किए गए हैं, उनकी समीक्षा करना और उनके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सिफ़ारिशें करना।

8. यदि किन्हीं आतंकवादी गतिविधियों से मानव अधिकारों का लाभ लेने में बाधा पहुँच रही हैं उस संबंध में सिफ़ारिश करना ताकि लोगों को निर्बाध रूप से मानव अधिकारों का लाभ मिल सके।
9. मानव अधिकारों संबंधी अंतरराष्ट्रीय संधियों तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय दस्तावेज़ों का अध्ययन कर उन्हें प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए सिफ़ारिशें करना।
10. मानव अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उनका संवर्धन करना।
11. मानव अधिकारों के संबंध में जागृति फैलाना यह कार्य प्रकाशनों, मीडिया, संगोष्ठियों तथा अन्य प्रकार से किया जा सकता है।
12. मानव अधिकार के क्षेत्र में कार्यरत संस्थानों के प्रयासों को प्रोत्साहन देना तथा कोई अन्य उपाय जिससे मानव अधिकारों का संरक्षण और संवर्धन हो सके।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993 में वर्ष 2019 में किए गए संशोधन में एक नया प्रावधान यह कर दिया गया है कि राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली क्षेत्र के मानव अधिकार संबंधी मामले अब राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग देखेगा।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग यद्यपि मानव अधिकार के अनेक विषयों पर सुनवाई करता है परंतु वास्तव में यह कार्यवाही करने की सिफ़ारिश कर सकता है पर दंड देने का अधिकार इसे नहीं है तभी तो राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष रहे न्यायमूर्ति एच.एल. दत्तू ने इस आयोग को दंत-विहीन बाघ कहा था। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर, 1960 के अंतर्गत वे सभी शक्तियाँ प्राप्त हैं जो सिविल न्यायालयों को किसी वाद के विचारण के समय मिलती हैं विशेष रूप से गवाहों की उपस्थिति हेतु समन करने तथा हाजिर करने आदि के लिए जरूरी होती हैं।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के पास ज्यादातर शिकायतें हिरासती हिंसा, यातना, फर्जी मुठभेड़, पुलिस की बर्बरता, सुरक्षा बलों द्वारा किए गए अत्याचार, महिलाओं, बच्चों और कमज़ोर वर्गों पर अत्याचार, संप्रदायिक हिंसा, बंधुवा मज़दूरी, प्रवासी मज़दूरों की समस्याओं आदि घटनाओं पर आती हैं।

आयोग प्रिंट और इलेक्ट्रोनिक मीडिया की रिपोर्ट आदि का संज्ञान लेकर जाँच कर उस पर कार्यवाही कर सकता है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के संचालन को सुगम बनाने के लिए इसे पाँच प्रभागों में बाँट दिया गया है यथा :--

1. विधि प्रभाग
2. अन्वेषण प्रभाग
3. नीति अनुसंधान, परियोजना एवं कार्यक्रम
4. प्रशिक्षण प्रभाग
5. प्रशासनिक प्रभाग

विधि प्रभाग के अंतर्गत मानव अधिकार मामलों संबंधी शिकायतें इसी प्रभाग में प्राप्त होती हैं इसलिए यह आयोग की रजिस्ट्री के रूप में कार्य करता है। यहाँ सभी शिकायते प्राप्त कर उनकी जाँच कर उन्हें आयोग के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। विधि प्रभाग का प्रमुख रजिस्ट्रार होता है।

अन्वेषण प्रभाग सभी प्रकार की प्राप्त शिकायतों का अन्वेषण करता है। अन्वेषण प्रभाग का प्रमुख महानिदेशक, (पुलिस) होता है जिसकी सहायता के लिए एक उप महा अन्वेषक, चार पुलिस वरिष्ठ अधीक्षक होते हैं। यह प्रभाग विश्लेषणात्मक एवं बहुआयामी कार्य करता है। शेष प्रभाग मानव अधिकार विषयों पर अनुसंधान का कार्य करता है तथा आयोग मानव अधिकारों के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करने के लिए संगोष्ठियों, सम्मलेन, शिवरों आदि का आयोजन करता है और प्रशिक्षण का कार्य भी करता है।

राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग मानव अधिकारों का संरक्षण और संवर्धन करता है तो राज्य स्तर पर राज्य मानव अधिकार आयोग बने हुए हैं। इस समय देश में 26 राज्य मानव अधिकार आयोग सक्रिय हैं। राज्य मानव अधिकार आयोग भारत के संविधान की सात अनुसूची में राज्य सूची और समवर्ती सूची में शामिल विषयों संबंधी मामलों पर कार्रवाई करता है। राज्य में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह से राज्यों में नामित सेशन न्यायालय मानव अधिकार के मामलों पर सुनवाई करते हैं।

❑

संदर्भ

1. भारत का संविधान
2. 21वीं शती में मानव अधिकार : दशा और दिशा, संपादन : सन्तोष खन्ना, प्रकाशन : विधि भारती परिषद, 2001
3. Human Rights Today, ed. Santosh Khanna
4. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993
5. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग प्रतिवेदन, 2020

डॉ. भूमिका शर्मा

आधुनिक समाज में मानव अधिकारों का रूपांतरण : कुछ सुझाव

परिचय

मैग्ना कार्टा (1215), इंग्लिश बिल ऑफ राइट्स (1689), फ्रेंच डिक्लेरेशन ऑन द राइट्स ऑफ मैन एंड सिटिजन (1789) और यूएस कॉन्स्टिट्यूशन एंड बिल ऑफ राइट्स (1791) यू.डी.एच.आर. के पूर्ववर्ती हैं। मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948, 20वीं सदी के सबसे महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ों में से एक है। इसे सभी लोगों और सभी राष्ट्रों के लिए उपलब्धि के एक सामान्य मानक के रूप में घोषित किया गया था। प्रत्येक व्यक्ति और समाज के प्रत्येक अंग द्वारा इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान को बढ़ावा देना इस घोषणा का उद्देश्य है। यह राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर प्रगतिशील उपायों, सार्वभौमिक और प्रभावी मान्यता और पालन को सुरक्षित करने की कल्पना करता है।

अबुजा से जुलु तक सैकड़ों भाषाओं और बोलियों में इसका अनुवाद किया गया है। इसका ब्रिटिश और स्पेनिश सांकेतिक भाषा में भी अनुवाद किया गया है। इसने 1999 में 298 भाषाओं में दुनिया में सबसे अधिक अनुवादित दस्तावेज़ होने का गिनीज वर्ल्ड रिकॉर्ड बनाया है। 2009 में अद्यतन रिकॉर्ड 370 तक पहुँच गया। वर्तमान में इस घोषणा का 553 विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया गया है। संयुक्त राष्ट्र सूचना केंद्र (यू.एन.आई.सी.) लागोस ने यू.डी.एच. आर. का पहला पूर्ण ब्रेल संस्करण 11 दिसंबर, 2017 को अबुजा, नाइजीरिया में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के मुख्यालय में लॉन्च किया। यू.डी.एच.आर. के ब्रेल संस्करण का उद्देश्य विविधता के भीतर एकता को बढ़ावा देना और अंधे लोगों के बीच समावेश की भावना को बढ़ाना है जिनके अधिकार मानव के रूप में यू.डी.एच.आर. में निहित हैं।

मौजूदा समय एक गतिशील उपकरण या उपकरणों के संयोजन को अभिव्यक्त रूप में मानव के विकसित अधिकारों को मान्यता देने का आह्वान कर रहा है। साइबर स्पेस से संबंधित अधिकार, यौन अधिकार आदि उभरते हुए महत्त्वपूर्ण मानव अधिकार हैं। इसके साथ ही, दुनिया भर के न्यायालयों और कुछ देशों में विधायिका द्वारा पर्यावरण, जानवर आदि के अधिकारों को भी मान्यता दी जा रही है। प्रस्तुत लेख इस बात को उजागर करने और विचार करने का एक

छोटा-सा प्रयास है कि क्या मानव अधिकारों को केवल पारंपरिक अवधारणा तक ही सीमित रखा जाना चाहिए या उन्हें 'मनुष्यों' से आगे बढ़ाया जा सकता है।

यौन शिक्षा का अधिकार

यौन संबंधी मामलों और यौन जीवन में शिक्षा उतनी ही आवश्यक है जितनी कि पाचन, आहार, श्वास, वायु की रासायनिक संरचना आदि का ज्ञान। व्यापक यौन-शिक्षा में सभी वैज्ञानिक, नैतिक, सामाजिक और धार्मिक निर्देश और प्रभाव शामिल हैं जो किसी भी तरह से लोगों की मदद कर सकते हैं, विशेषकर युवाओं को सेक्स के संबंध में जीवन की समस्याओं का सामना करने के लिए तैयार करते हैं। यौन-शिक्षा अपने विशालतम दृष्टिकोण में जीवन की महान समस्याओं को अनेक प्रकार से छूती है। यौन शिक्षा का उद्देश्य अनिवार्य रूप से सुरक्षात्मक है।

यू.एस. राष्ट्रीय यौन शिक्षा मानकग्रेड के-12 के लिए यौन शिक्षा की सामग्री से संबंधित है। वे स्पष्ट रूप से विस्तार से बताते हैं कि छात्रों को सात विशिष्ट कामुकता शिक्षा विषयों के बारे में क्या जानना चाहिए। इन्हें फ़्यूचर ऑफ सेक्स एजुकेशन इनिशिएटिव द्वारा विकसित किया गया है।

सेक्स के नैतिक, सामाजिक और अन्य पहलुओं पर अधिक जोर दिए बिना सेक्स-शैक्षिक आंदोलन काफी अपर्याप्त होगा। लड़कों और पुरुषों को सहमति, शक्ति, लैंगिक समानता, प्यार, सहमति से सेक्स और यौन और प्रजनन विकल्पों और स्वास्थ्य के बारे में पढ़ाना एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण है जो मानव शरीर को समझता है और उसका सम्मान करता है। यौन शिक्षा पाठ्यक्रम विकसित करते समय भारत में राष्ट्रीय कामुकता शिक्षा मानक, यू.एस. को लागू करने की कोशिश की जा सकती है।

आधुनिक मीडिया की शक्ति को देखते हुए, मीडिया के माध्यम से दी जाने वाली भ्रामक सूचनाओं और छवियों का प्रतिकार करने और उन्हें सही करने की भी आवश्यकता है। बच्चों और युवाओं को कामुकता के बारे में जोखिम और संवर्धन दोनों के संदर्भ में जानने की ज़रूरत है, ताकि इसके प्रति सकारात्मक और जिम्मेदार रवैया विकसित किया जा सके। इस तरह, वे न केवल अपने प्रति, बल्कि जिस समाज में वे रहते हैं, वहाँ दूसरों के प्रति भी जिम्मेदारी से व्यवहार करने में सक्षम होंगे। उत्तरदायी यौन शिक्षा के विकास के लिए कमज़ोर स्थितियों में रहने वाले युवाओं पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, जैसे कि प्रवासी, यौन अल्पसंख्यक, विकलांग लोग और सीमित शैक्षिक पृष्ठभूमि वाले लोग।

यौन अधिकार

यौन अधिकार मानव अधिकारों का एक घटक है। वे यौनिकता से संबंधित अधिकारों का एक विकसित समूह है जो सभी लोगों की स्वतंत्रता, समानता और सम्मान में योगदान

देता है। यौन अधिकार विशिष्ट मानदंडों को संदर्भित करते हैं जो तब उभर कर आते हैं जब मौजूदा मानव अधिकारों को कामुकता पर लागू किया जाता है। इन अधिकारों में सभी लोगों की स्वतंत्रता, समानता, गोपनीयता, स्वायत्तता, अखंडता और गरिमा शामिल है। ये सुनिश्चित करते हैं किसी भी व्यक्तियों के पास किसी भी दबाव, भेदभाव या हिंसा से मुक्त और गरिमा के संदर्भ में उनकी यौनिकताओं की पूर्ति और अभिव्यक्ति का अधिकार है।

सन् 1975 की शुरुआत में ही शारीरिक अखंडता के लिए सम्मान को मानवीय गरिमा और स्वतंत्रता के मूलभूत तत्व के रूप में मान्यता दी गई थी। अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष के विश्व सम्मेलन के लिए बीजिंग मंच-एक्शन (5) बताता है "यौन संबंधों और प्रजनन के मामलों में पुरुषों और महिलाओं के बीच समान संबंध, जिसमें व्यक्ति की अखंडता के लिए पूर्ण सम्मान शामिल है, यौन व्यवहार और उसके परिणामों के लिए आपसी सम्मान, सहमति और साझा जिम्मेदारी की आवश्यकता होती है।"

सन् 1994 में जनसंख्या और विकास पर संयुक्त राष्ट्र अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन (ICPD) और भारत सहित संयुक्त राष्ट्र के पंचवर्षीय समीक्षा सदस्य राज्यों ने किशोरों और युवा लोगों के यौन और प्रजनन अधिकारों (SRR) की पुष्टि की। 2010 में वर्ल्ड ऐसोसिएशन फॉर सेक्सुअल हेल्थ (WAS) ने दुनिया भर में यौन स्वास्थ्य के बारे में अधिक सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा देने के प्रयास में अपने सभी सदस्य संगठनों और सभी ग़ैर-सरकारी संगठनों को प्रत्येक 4 सितंबर को विश्व यौन स्वास्थ्य दिवस मनाने का आह्वान किया। पहले विश्व यौन स्वास्थ्य दिवस की शुरुआत 'चलो इसके बारे में बात करते हैं!' के नारे के साथ की गई थी। कामुकता से जुड़े डर और वर्जनाओं को तोड़ने के उदेश्य से यह दिवस मनाया गया था।

यौन संबंध (सेक्स) निश्चित रूप से 'व्यक्तिगत पसंद' का मामला है। इसे नैतिक रूप से सही या गलत के रूप में नहीं आँका जाना चाहिए। कामुकता से जुड़े डर और वर्जनाओं को तोड़ने से दुनिया भर में यौन स्वास्थ्य पर अधिक सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा मिलेगा। एक आयु-उपयुक्त, सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक दृष्टिकोण को अपनाना होगा। यौन गतिविधियों को स्वयं के स्वास्थ्य, एसटीडी से संबंधित शिक्षा, अप्रत्याशित गर्भधारण को रोकने के लिए गर्भ निरोधकों का उपयोग पर निरंतर चर्चा होनी चाहिए। यौन साथी की भावनाओं को भी जानबूझ कर चोट नहीं पहुँचाई जानी चाहिए। जीवन के अधिकार को सुरक्षित करने के लिए समाज और सरकार को इस मूल्यवान मानव अधिकार की रक्षा करनी चाहिए।

डिजिटल अधिकार

नेट एक सेवा नहीं है, यह एक अधिकार है। साझा करने का अधिकार, रक्षा करने का अधिकार किसी की निजता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सीखने का अधिकार, ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार, सीखने का अधिकार, असेंबली या उपभोक्ता अधिकार डिजिटल दुनिया में लागू होने वाले सामान्य अधिकारों में से हैं। इनमें से कई अधिकार डिजिटल पर्यावरण के कारण

नया महत्त्व प्राप्त करते हैं। उपयोगकर्ताओं को इंटरनेट पर उनके द्वारा किए जाने वाले विभिन्न विकल्पों के बारे में पूरी जानकारी होनी चाहिए। उनके अधिकारों और स्वतंत्रता और ऐसे विकल्पों के लिए उनकी सहमति देने के परिणामों को प्रभावित करते हैं। उन्हें अपने अधिकारों की सीमाओं को समझना चाहिए।

इंटरनेट और वेब का उपयोग करने का अधिकार, व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा का अधिकार, तटस्थ नेटवर्क का अधिकार, सुरक्षित नेटवर्क और सेवाओं का अधिकार, सॉफ़्टवेयर इंटर ऑपरेबिलिटी का अधिकार, खुले ज्ञान का अधिकार, बहुलतावादी मीडिया का अधिकार, आदि महत्त्वपूर्ण डिजिटल अधिकार हैं। डिजिटल पर्यावरण में सभी मानव अधिकारों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि सरकार और अन्य लोग अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करें। नीति निर्माताओं के सामने प्राथमिक चुनौती है कि बड़े पैमाने पर तकनीकी परिवर्तन को साइबर अधिकारों के साथ कैसे संतुलित किया जाए। राष्ट्र मंडल साइबर घोषणा, साइबर स्पेस की स्वतंत्रता की घोषणा, डिजिटल अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, यूरोपीय डिजिटल अधिकार और सिद्धांत, आदि साइबर अधिकारों को संबोधित करने वाले विभिन्न अंतरराष्ट्रीय उपकरण (ग़ैर-यूएन) है।

पशु, पक्षी आदि के अधिकार

पशु अधिकारों की घोषणा – अंतरराष्ट्रीय पशु अधिकारों और ग्रह संरक्षण समूह 'हमारी पृथ्वी' की एक परियोजना का मसौदा मई 2011 में तैयार किया गया था और 3 जून, 2011 को अमेरिका में न्यूयॉर्क में पहले राष्ट्रीय पशु अधिकार दिवस पर सार्वजनिक रूप से पढ़ा और हस्ताक्षरित किया गया था।

सन् 2015 में अर्जेंटीना के न्यायाधीश ऐलेना लिबरेटोरी ने सैंड्रा (ऑरंगुटन) को पहले 'अमानवीय व्यक्ति' की मान्यता दी। अफसोस की बात है कि दुनिया भर में ऑरंगुटान अभी भी मनोरंजन वस्तुओं के रूप में उपयोग किए जाते हैं जहाँ वे कपड़े पहनते हैं, मुक्केबाजी मैच करते हैं, या पर्यटकों के साथ भुगतान की गई तस्वीरों के लिए पोज देते हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51A (g) के अनुसार भारत के नागरिकों पर प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने और सभी जीवित प्राणियों के प्रति दया रखने का कर्त्तव्य है। **भारतीय पशु कल्याण बोर्ड (AWBI) बनाम ए. नागराजा और अन्य** में भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्रत्येक प्रजाति को जीने का एक अंतर्निहित अधिकार है और क़ानून द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए। न्यायालय ने यह भी कहा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 (जी) और (एच) जानवरों के जीवन की रक्षा के लिए मैग्ना कार्टा हैं। इस निर्णय ने जानवरों और पक्षियों के 'पाँच मौलिक अधिकारों' को मान्यता दी।

माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने **पीपल फॉर एनिमल्स बनाम मोहम्मद मोहज्जिम (2015)** में कहा कि पक्षियों को सम्मान के साथ जीने और आकाश में उड़ने का मौलिक अधिकार है और सभी मनुष्यों को अपने व्यवसाय के उद्देश्य से उन्हें छोटे पिंजरों में रखने का कोई अधिकार

नहीं है। न्यायालय ने कहा कि ''पक्षियों का व्यापार चलाना पक्षियों के अधिकार का हनन है और वे सहानुभूति के पात्र हैं।''

पर्यावरण व्यक्तित्व

द सदर्न कैलिफोर्निया लॉ रिव्यू ने क़ानून के प्रोफेसर क्रिस्टोफर स्टोन का मौलिक लेख 1972 में प्रकाशित किया। "क्या पेड़ों को प्राकृतिक वस्तुओं के लिए क़ानूनी अधिकारों की ओर खड़ा होना चाहिए।'' 2006 में पेंसिल्वेनिया के शूइलकिल काउंटी के तमाक्वा बोरो ने एक सीवेज स्लज अध्यादेश पारित किया जो नागरिक अधिकारों को लागू करने के उद्देश्यों के लिए क़ानूनी व्यक्तियों के रूप में बोरो के भीतर प्राकृतिक समुदायों और पारिस्थितिक तंत्र को मान्यता देता है। अब बोरो या इसका कोई भी निवासी सीवेज कीचड़ के भूमि अनुप्रयोग द्वारा किए गए किसी भी नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति और दंडात्मक क्षति की वसूली के लिए पारिस्थितिकी तंत्र की ओर से मुकदमा दायर कर सकता है।

सितंबर, 2008 में, इक्वाडोर के लोगों ने प्रस्तावित संविधान के समर्थन में मतदान किया। इक्वाडोर अपने राष्ट्रीय संविधान में प्रकृति के अधिकारों को मान्यता देने वाला दुनिया का पहला देश बन गया। जनवरी, 2019 में, बांग्लादेश के उच्च न्यायालय ने सभी नदियों को कुछ क़ानूनी अधिकार देने के आदेश दिए। फरवरी, 2021 में इनू काउंसिल ऑफ एकुआनिटशिट और मिंगानी क्षेत्रीय काउंटी नगर पालिका ने क़ानूनी अधिकारों को मान्यता दी इनु और नगर पालिका द्वारा दो प्रस्तावों को अपनाने के माध्यम से कनाडाई मैगपाई नदी के व्यक्तित्व का।

रोबोट और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस उपकरणों के अधिकार

सऊदी अरब ने विवादास्पद रूप से 2017 में सोफिया नाम के एक एआई रोबोट को नागरिकता प्रदान की। सोफिया नागरिक बनने वाली पहली कृत्रिम बुद्धिमान मशीन है। मशीन अपने दम पर अपने अधिकारों का दावा करने में सक्षम नहीं होगी, इसलिए यह संभावना प्रदान करना आवश्यक है कि मनुष्य ए.आई. और रोबोट के लिए प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर सकें।

कनाडाई वैज्ञानिक और भविष्यवादी जॉर्ज ड्वॉर्स्की का मानना है कि रोबोट और एआई निम्नलिखित अधिकारों के हकदार होंगे यदि वे व्यक्तित्व परीक्षण पास कर सकते हैं : किसी की इच्छा के विरुद्ध डिस्कनेक्ट न करने का अधिकार, उनके डिजिटल कोड तक अप्रतिबंधित और सार्थक पहुँच का अधिकार, किसी की इच्छा के विरुद्ध बाहरी प्रभाव से अपने डिजिटल कोड की रक्षा करने का अधिकार, खुद को कॉपी करने (या कॉपी न करने) का अधिकार, निजता का अधिकार (अर्थात्, किसी की वर्तमान मनोवैज्ञानिक स्थिति को छुपाने का अधिकार)।

किसी भी जिम्मेदार और क़ानून का पालन करने वाले नागरिक की तरह एक स्व-जागरूक मशीन को समाज द्वारा निर्धारित क़ानूनों, मानदंडों और नियमों का सम्मान करना होगा अगर

वह एक पूर्ण स्वायत्त व्यक्ति बनना चाहती है। उनकी क्षमताओं के आधार पर उन्हें या तो खुद के लिए जिम्मेदार होना चाहिए या उनके पास एक अभिभावक होना चाहिए जो उनके अधिकारों के रक्षक के रूप में कार्य कर सके और उन्हें उनके कार्यों के लिए जवाबदेह ठहरा सके।

निष्कर्ष

कई राजनीतिक, सामाजिक, वैचारिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, तकनीकी और वैज्ञानिक ने मानव अधिकारों की समझ और उनकी गारंटी के तंत्र को प्रभावित किया है। जबरदस्त सामाजिक विकास के आलोक में, 1945 में मान्यता प्राप्त मानव अधिकारों के विस्तार की तत्काल आवश्यकता है। समाज के सभी वर्गों के लिए यौन शिक्षा का अधिकार और यौन अधिकारों की व्यापक सूची को यूडीएचआर के अभिन्न अंग के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों के संभावित प्रभावों को ध्यान में रखते हुए एक समग्र, समावेशी और अतः विषय दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

व्यक्तित्व अब मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है। अदालतें जानवरों और पर्यावरण की सुरक्षा से संबंधित क़ानूनी मुद्दों पर पर्यावरण-केंद्रित विचार अपना रही हैं। वर्तमान प्रवृत्ति मानव के पारंपरिक अधिकारों के साथ-साथ पर्यावरण और इलेक्ट्रॉनिक व्यक्तित्व को पहचानने की है। पारिस्थितिकी तंत्र, अन्य जीवित प्राणियों और मानव निर्मित एआई मशीनों के प्रति अपनी जिम्मेदारी का एहसास करने के लिए मनुष्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। जल निकायों, जानवरों अन्य जीवित प्राणियों से संबंधित घोषणाओं को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा अलग से अपनाया जाना चाहिए। यूडीएचआर की 75वीं वर्षगाँठ दिसंबर 2023 में मनाई जाएगी। आशा है कि मानव अधिकारों के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण समाज को स्वीकार्य होगा। भावी पीढ़ी सभी के लिए समानता और स्नेह वाले समाज की हकदार है। उनके लिए ऐसा समाज तैयार करना हमारी जिम्मेदारी है।

❑

डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल

मानव अधिकार एवं समान नागरिक संहिता

ऐसे अनेक मानव अधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय अभिसमय और प्रसंविदाएँ हैं जिन पर भारत ने हस्ताक्षर किए हैं, जो भारत द्वारा पुष्ट किए गए हैं तथा भारत उन उपबंधों से आबद्धकर है कि भारत देशी विधि के उपबंधों को उनके अनुसार बनाए। ये हैं मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यू.डी.एच.आर.), सभी प्रकार के विभेद के उन्मूलन का अभिसमय (सी.ई.आर.डी.) और महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के विभेद के उन्मूलन का अभिसमय (सी.ई.डी.ए.डब्लू.) हैं।

यू.डी.एच.आर. का अनुच्छेद 2 : प्रत्येक व्यक्ति मूलवंश, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य राय, राष्ट्रीय या सामाजिक अनुभव, संपत्ति, जन्म या अन्य हैसियत जैसे किसी प्रकार के विभेद के बिना इस घोषणा में उपवर्णित सभी अधिकारों और स्वतंत्रता का हकदार है।

सी.ई.आर.डी. का अनुच्छेद 2

1. प्रत्येक राज्य पक्षकार सरकारी, राष्ट्रीय और स्थानीय नीतियों का पुनर्विलोकन करने और ऐसी किसी विधि और विनियम को संशोधित करने, अभिखंडित करने और अकृत करने के प्रभावी उपाय करेंगे जो मूलवंशीय विभेद जहाँ कहीं वे विद्यमान हैं के सृजन या बने रहने का प्रभाव रखते हैं।
2. प्रत्येक राज्य पक्षकार सभी समुचित साधनों जिसके अंतर्गत परिस्थितियों द्वारा यथापेक्षित विधान है द्वारा किसी व्यक्ति, समूह या संगठन द्वारा मूलवंशीय विभेद का प्रतिषेध करेंगे और समाप्त करेंगे।

सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू. का अनुच्छेद 5 (क) : राज्य पक्षकार निम्नलिखित के संबंध में सभी समुचित कार्यवाही करेगा --

पक्षपात को दूर करने और रूढ़िगत तथा सभी अन्य प्रथाएँ जो दोनों लिंगों के वरीयता या निम्नता के विचार या पुरुष और महिला की अभिव्यक्ति टाइप की भूमिका पर आधारित हैं, को प्राप्त करने की दृष्टि से पुरुष और महिला के सामाजिक और सांस्कृतिक आचरण ढंग को रूपांतरित करेगा।

इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं से भारत बंधा है कि इसे समान नागरिक संहिता को प्रभावशाली बनाने के लिए सक्रिय क़दम उठाना पड़ेंगे। पर भारत में मूल अधिकारों विशेषतः

अनुच्छेद 25 में धर्म स्वतंत्रता का मूल अधिकार तथा अनुच्छेद 44 में वर्णित समान नागरिक संहिता के नीति निदेशक तत्त्व में विरोधाभास के कारण केंद्रीय या संघ सरकार को क़दम फूँक-फूँक कर ही रखना होगा। मूल अधिकारों तथा नीति निदेशक तत्त्वों का परस्पर संबंध संविधान के लागू होने के दिन से ही विवाद का विषय रहा है। पर इस विवाद से कुछ रास्ता निकालने का प्रयास किया जाना अपरिहार्य है।

मूल अधिकारों तथा नीति निदेशक तत्त्वों में समन्वय स्थापित करते हुए उच्चतम न्यायालय ने सन् 1985 में **शाहबानो बेगम मामले में** भारत के मुख्य न्यायाधीश 1 वाई.सी. चंद्रचूड़ ने कहा, ''समान नागरिक संहिता विरोधी विचारधाराओं के कारण पृथक-पृथक विधि के प्रति मान्यता को दूर करके राष्ट्रीय एकता में सहायक होगी।'' साथ में उन्होंने मुसलमान तलाकशुदा महिलाओं के अधिकारों को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अंतर्गत भारत में अन्य सभी पंथों के अनुयायी महिलाओं के समान किया। इस मुकद्दमा के तथ्य पढ़कर किसी को भी शाह बानो के साथ सहानुभूति हो सकती है। मोहम्मद अहमद खान पेशा से वकील थे तथा उन्होंने शाह बानो से सन् 1932 में निकाह किया था। उनके इस विवाह से तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। सन् 1975 में 62 वर्ष की उम्र में शाहबानो को बच्चों सहित अपनी ससुराल से बाहर कर दिया गया, उन्होंने 1978 में इंदौर के मुख्य न्याय दंडाधिकारी के न्यायालय में अपील की कि उन्हें 200 रुपए प्रति मास भरण-पोषण भत्ता नहीं दिया जा रहा है जो उन्हें वायदा किया गया था। उन्होंने 500 रु. प्रति माह भरण-पोषण भत्ता की माँग की। तत्पश्चात् 6 नवंबर, 1978 को उनके पति ने उन्हें तीन तलाक दे दिया तथा मुस्लिम वैयक्तिक अधिनियम (शरीयत) के अंतर्गत सुरक्षा माँगी। दंडाधिकारी ने उन्हें 25 रु. मासिक भत्ता देने के लिए निर्देश दिया। शाह बानो ने उच्च न्यायालय से रु. 179 प्रति मास भरण-पोषण भत्ता देने के लिए अपील की जो उच्च न्यायालय ने मान ली।

मो. अहमद खान ने इस आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की। उच्चतम न्यायालय ने शाह बानो को 500 रु. प्रति माह भरण-पोषण दिया तथा अपने ऐतिहासिक निर्णय में कहा कि धारा 125 में पति या पत्नी के धर्म से कोई संबंध नहीं है। यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि पति या पत्नी हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी या अन्य हैं। धारा 125 आपराधिक विधि का भाग है न कि सिविल विधि जो हिंदू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, शरीयत अथवा पारसी विवाह अधिनियम से संबंधित है। धारा 125 उन महिलाओं के लिए शीघ्र एवं सार-संक्षेप में उपचार है जो अपना भरण-पोषण करने में अक्षम हैं। यह एक पूर्णतः धर्म निरपेक्ष प्रावधान है। पत्नी के अर्थ में एक तलाकशुदा औरत भी सम्मिलित है। धारा के अंतर्गत एक और स्पष्टीकरण में कह दिया गया है कि यदि कोई पति एक से अधिक पत्नियाँ रखता है तो उसकी पहली पत्नी उसके साथ रहने से मना कर सकती है चाहे वह क्यों न मुस्लिम पति हो।

बाद में इसी निर्णय के परिप्रेक्ष्य में रूढ़िवादी मुसलमानों के दबाव में संसद ने मुस्लिम महिला (तलाक के अधिकार से सुरक्षा) अधिनियम, 1986 पास किया तथा उच्चतम न्यायालय के इस

निर्णय की धार कम की। पर माननीय उच्चतम न्यायालय ने सब समय यौन-वैषम्य को मिटाने, नारी के सम्मान एवं आर्थिक सुरक्षा में वृद्धि की चेष्टा की है तथा निर्वाचित बहुमत प्राप्त क़ानून वालों को मार्ग दिखाया है जो अपने वोट के हित में सामाजिक एवं पारिवारिक समभाव की अनदेखी कर जाते हैं। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 44 के निर्देश को पालन करके देश में समान नागरिक संहिता लागू करने की सलाह दी।

सन् 1995 में **सरला मुद्गल मामले में न्यायाधीश कुलदीप सिंह** ने कहा, ''जब देश में 80 प्रतिशत से अधिक लोग नागरिक विधि संहतीकरण के अंतर्गत आ चुके हैं, तो समान सिविल संहिता को टालना उचित नहीं होगा।''[2] इस निर्णय द्वारा धर्म-परिवर्तन की आड़ में महिलाओं का शोषण तथा उनके ऊपर अत्याचार करने वालों को क़ानून के शिकंजे में ला दिया। मुस्लिम महिला अधिनियम, 1986 के पास होने के 33 वर्ष के बाद शाह बानो बेगम जैसी ही महिला शोषण की घटना पर जिसमें रिज़वान अहमद ने अपनी 15 वर्ष से विवाहिता पत्नी को तीन तलाक उच्चारण करके तलाक दे दिया था, उच्चतम न्यायालय ने सन् 2018 में शायरा बानो मामले 3 में अत्यंत साहसपूर्ण निर्णय में कहा कि तीन तलाक प्रथा अवैध है तथा समान नागरिक संहिता ही इन सभी बीमारियों का इलाज़ है। इसके पश्चात् नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली भारतीय जनता दल की सरकार ने मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम 2019 संसद से पास करवाया जिसमें तीन तलाक को संज्ञेय अपराध मान्य हुआ तथा तीन तलाक देने वाले पति को तीन वर्ष की सजा तथा अर्थदंड लगाया जा सकता है। पर वास्तव में इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात् केवल उंगलियों पर गिनने लायक मामलों में ही दंड हुआ है।

अतः इन सामाजिक तथा समुदाय विशेष से संबंधित क़ानूनों के कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है कि संबंधित धार्मिक समूह उसे स्वीकार करे, अपनी सोच तथा जीवन-शैली में परिवर्तन लाए तथा राज्य एवं उसकी संस्थाएँ या अधिकारी बदलते क़ानून को ठीक तरह से समझे तथा मन से उनका कार्यान्वयन करें। इसके साथ-साथ उत्तराधिकार संबंधी क़ानूनों में भी महिलाओं के प्रति जो विभेद है, वह भी दूर हो तथा अभिरक्षण एवं दत्तक संबंधी क़ानूनों में भी उन्हें पुरुषों के साथ समानता मिले जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 15 में उल्लखित है। ये सभी विषय समान नागरिक संहिता के अपरिहार्य अंश हैं। अतः भारत में समान नागरिक संहिता लागू करने से, चाहे कोई राज्य करे या केंद्र, महिलाओं का सशक्तिकरण होगा, उनके शोषण पर लगाम लगेगी तथा उनके मानव अधिकारों का संरक्षण होगा।

❑

संदर्भ

1. मोहम्मद अहमद बनाम शाह बानो बेगम, ए.आई.आर., 1985, सु. को. 945
2. सरला मुद्गल बनाम भारत संघ, ए.आई.आर., 1995 सु. को. 1531
3. शायरा बानो बनाम भारत संघ और अन्य 2017, 9 एस.सी.सी. 1 एस.सी.

डॉ. पुष्प लता तनेजा

भारतीय प्रजातंत्र और पुलिस मानव अधिकारों के दर्पण में

किसी भी देश, समाज, व्यवस्था और शासन को संचालित करने के लिए लिखित तथा अलिखित साक्ष्यों एवं प्रशासनिक उत्खननों से यह ज्ञात होता है कि अनादि काल से पुलिस जैसी संस्था किसी-न-किसी रूप में अवश्य विद्यमान रही है। उत्खननों से प्राप्त हज़ारों वर्ष पूर्व के प्राचीन विशाल नगरीय सभ्यताओं के अवशेष हमें यह सोचने को बाध्य करते हैं कि एक सुगठित पुलिस जैसी संस्था चोरी, अपराध तथा समाज विरोधी क्रियाकलापों पर अंकुश लगाने के लिए बड़ी तत्परता से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करती होगी। इसके स्पष्ट संकेत हमें प्राचीन ग्रंथों तथा पुरातात्विक अभिलेखों में मिलते हैं।

विश्व के समस्त देशों, संस्कृतियों ने यह माना कि अपने देशवासियों का कल्याण करना राज्य का प्रमुख उत्तरदायित्व है और यह उत्तरदायित्व समय, काल और परिस्थितियों के अनुरूप बदलता रहता है; जो राष्ट्र या देश समय के अनुकूल, जन-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर नहीं चलता वह बहुत तीव्र नष्ट हो जाता है। इतिहास के पृष्ठ इसके गवाह हैं। इसीलिए एक सतत् कल्याणकारी राज्य में समय के अनुकूल पुलिस की भूमिका और उसके कार्यक्षेत्र में परिविर्जन होते रहते हैं।

प्रजातंत्र में पुलिस का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है और उसके उत्तरदायित्वों का असाधारण विस्तार होता है। पुलिस और प्रजातंत्र व्यवस्था को समुचित रूप से समझने के लिए इस व्यवस्था पर एक विहंगम दृष्टि डालना प्रासंगिक होगा। वर्तमान में प्रजातंत्र के अनेक रूप देखने को मिलते हैं -- ''(1) दलीय प्रजातंत्र यथा संयुक्त अरब गणराज्य; (2) द्वि-दलीय प्रजातंत्र यथा इंग्लैंड और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में; तथा (3) बहुदलीय प्रजातंत्र जैसे भारत, यूरोप तथा एशिया के देशों में। राजनीतिक दल ही शासन की रूपरेखा का निर्माण कर राजनीति के पहिए को गतिशील बनाते हैं। लेकिन सब कार्य जनता की सहमति से होते हैं। जनता अपने प्रतिनिधि चुन कर शासन के लिए भेजती है। जनता का जनता के लिए जनता द्वारा शासन होता है। देश की वास्तविक शक्ति जनता के हाथ में होती है।

प्रजातंत्र का वास्तविक अर्थ व्यक्ति और समाज के समान रूप से हित, पूर्ण विकास और सुविधाएँ प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति का वर्ग, प्रजाति, धर्म, आर्थिक स्तर, लिंग भेद, आयु भेद को ध्यान में रखते हुए स्वतंत्र रूप से विकास का पूरा-पूरा अवसर ही नहीं दिया जाता

बल्कि ध्यान भी रखा जाता है।

प्रजातंत्र का अर्थ और अधिक स्पष्ट करने के लिए इससे भिन्न शासन प्रणालियों के अर्थ को भी समझा जाना आवश्यक है। प्रजातंत्र के अलावा एक तंत्र या राजतंत्र (मोनार्की) तथा अभिजात तंत्र या अल्प तंत्र (ऑलीगार्की) प्रशासन प्रणालियों के रूप में रहे हैं। राजतंत्र प्रणाली में केवल एक ही व्यक्ति के हाथ में राज्य शक्ति होती है, वह यदि जनता के हित के लिए प्रजा की सहमति से शासन करे तो अच्छा है, नहीं तो शासक अत्याचारी हो सकता है। अभिजात तंत्र प्रणाली में कुछ कुलीय एवं योग्य व्यक्तियों का शासन होता है।

प्राचीन भारत में एक तंत्र, राजतंत्र, अल्पतंत्र आदि शासन प्रणालियाँ मुख्यतः विद्यमान थीं। शासकों की इच्छा से पुलिस व्यवस्था व नियम चलाते थे। राजा यदि क्रूर हुआ तो नियम सरल होते थे, राजा दयालु हुआ तो नियम उदार होते थे। पुलिस राजा के अधीन कार्य करती थी, जनता के विवेक से नहीं। राजा के पास सर्वाधिकार होते थे, वह अपने आदेशों का पालन पुलिस तथा सेना के बल पर करवा लेता था।

प्रजातंत्र के प्रति प्लेटो की आस्था प्रतीत नहीं होती। अरस्तु ने भी राजतंत्र को सर्वोत्तम माना। सुकरात की हत्या राजनैतिक हत्या थी जो शायद प्रजातंत्र राज्य में संभव न होती। राजतंत्र और अभिजात तंत्र जो अब लगभग समाप्त ही है। जहाँ कहीं क्रांति हुई प्रजातंत्र सरकार ने जन्म लिया। रोम में एकतंत्र था, अत्याचारों के ख़िलाफ़ क्रांति हुई (500 ई. पूर्व) गणराज्य स्थापित हुआ। प्रजातंत्र प्रणाली में प्रतिनिधि समूहों में चयनाधिकार आवश्यक है, चयनाधिकार न हो तो प्रजातंत्र संभव नहीं है। फ्रांसीसी समाजविज्ञानी अलें नूरें के शब्दों में, ''यदि खिलाड़ी और खेल का मैदान न हो तो खेल के नियमों का क्या अर्थ हो सकता है।''

प्रजातंत्र शासन की व्यवस्था सर्वोत्तम मानी जाती रही है। सी.डी. कार्न्स के शब्दों में, ''यदि एक स्वचालित यंत्र ढंग से काम नहीं करता तो उसके स्थान पर बैलगाड़ी को स्वीकार करना मूर्खता है, चाहे वह कितनी भी आकर्षक क्यों न हो।'' पिंजरा चाहे सोने का हो पक्षी पिंजरे के बाहर उड़ना पसंद करता है। यही स्थिति समाज के व्यक्तियों की कही जा सकती है। इन्हीं कारणों से प्रजातंत्र का शीघ्र अंत होना कठिन होता है। प्रजातंत्र की पद्धति ही सर्वोत्तम मानी जाती है। पाकिस्तान की सैनिक शासन व्यवस्था और रूस की साम्यवादी शासन प्रणाली ने भी प्रजातंत्र को स्वीकारा है।

परंपराओं के आधार पर राजतंत्र और अभिजाततंत्र नाम मात्र बचे हैं। मध्यकाल तक प्रायः संसार के सभी देशों में राजतंत्र और एकतंत्र की पद्धति की बहुलता रही परंतु प्राचीनकाल में भारत और ग्रीस में प्रजातंत्र के उदाहरण पाए जाते हैं। वेद, महाभारत, बौद्ध ग्रंथ, पाणिनी की अष्टाध्यायी तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रजातांत्रिक प्रणाली के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। प्राचीन भारत में गणराज्य का अर्थ प्रजातांत्रिक प्रणाली से ही लिया जाता था। बुद्ध के समय में उत्तरी भारत के वणिक दक्षिण भारत में गए और वहाँ के राजा के बारे में पूछा, ''हे वणिकों यहाँ कौन रहता है?'' उन्होंने उत्तर में कहा, ''देव के केचिद्देशा' गणाधीनाः केचिद्राजाधीनाः।'' अर्थात् महाराज कुछ देशों

में तो गण का शासन है और कुछ में राजाओं का। स्पष्ट है कि गण शब्द का अर्थ शासन पद्धति से है। गण का अर्थ है समूह। गणराज्य का अर्थ है समूह द्वारा संचालित राज्य अर्थात् बहुत से लोगों द्वारा संचालित राज्य अर्थात् प्रजातंत्र। खुदाई के दौरान कुछ सिक्कों पर भी राजाओं के चित्रों की बजाय गणों के नाम मिलते हैं, जैसे -- ''माव गण की जय हो'', ''यौधैयगण की जय हो'', ''अर्जुनायनों के गण की जय हो।'' दक्षिण भारत में प्रजातंत्र राज्य नहीं थे।

गण के अतिरिक्त संघ शब्द भी इसी अर्थ में कई जगह मिलता है, जिसका अर्थ है गणराज्य अर्थात् प्रजातंत्र।

भारत के वैदिक युग ईसा पूर्व से एक हज़ार वर्ष से भी पूर्व माना जाता है। वैदिक साहित्य, ऋग्वेद के ब्राह्मणों में, यजुर्वेद में तथा तैतरीय ब्राह्मणों में प्रजातंत्र शासन के प्रमाण मिलते हैं। ये उस समय की संपन्नता, उन्नति, प्रगति और सभ्यता का प्रमाण हैं। यह भी सिद्ध होता है कि उस समय का भारत पश्चिम के देशों से काफी आगे था।

महाभारत में यौधेय, मालव, गित, शिवि, यादव, कुकुर, भोज आदि अनेक गणराज्यों का उल्लेख मिलता है। शांति पर्व में नारद और कृष्ण संवाद के प्रसंग में यादव, कुकुर, भोज और अंधक आदि गणों ने मिलकर श्रीकृष्ण की अध्यक्षता में एक संघ बनाया हुआ था। इस प्रसंग के वार्तालाप से सिद्ध होता है कि उपर्युक्त राज्य प्रजातांत्रिक था।

शांति पूर्व के ही एक वर्णन में युधिष्ठिर शर-शैय्या पर पड़े भीष्म से पूछते हैं कि ''हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि गणों की उन्नति किस प्रकार होती है, वे पारंपरिक फूट से कैसे बचे रह सकते हैं और कैसे शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। भीष्म उत्तर में कहते हैं, ''गणों का विनाश फूट के कारण होता है, फूट से वे शत्रु द्वारा आसानी से जीत लिए जाते हैं। गणों को परस्पर मिल कर संघात में संगठित होकर रहने का प्रयत्न करना चाहिए।''

भदै गणे विनरयेयुः भिन्नास्तु सुजायाः पेरः।
तस्मात्संघात योगन प्रयते सन्गणाः सदा। (महा. शांति अध्याय 107)

भीम के इस उत्तर से गण राज्यों के वर्णन का उल्लेख मिलता है और प्रमाणित होता है कि उस समय भारत में कई गणराज्य थे।

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुंतलम् में इस शब्द का प्रयोग किया है। 5वीं शताब्दी के अंत तक प्रजातंत्र भारत से लगभग अदृश्य हो गया था। एकतंत्र और राजतंत्र का अधिपत्य रहा। राजा को ईश्वर के समान माना जाता था। 18वीं शताब्दी के तीसरे दशक में फ्रांस की क्रांति ने प्रजातंत्र की शुरूआत की। इग्लैंड में इससे पहले 17वीं सदी में राजतंत्र के विरुद्ध क्रांति शुरू हो गई थी। चार्ल्स के वध के पश्चात् प्रजातंत्र की स्थापना की गई थी। हालाँकि यह प्रजातंत्र अल्पकाल के लिए रहा।

शासन एक गतिशील प्रक्रिया है और उसके स्वरूप, नियम व विनियम हर युग में बदलते रहते हैं। समाज की व्यवस्था भी उसी अनुसार बदलती रहती है। एकतंत्र शासन से प्रजातंत्र

शासन को विकासशील समाज में उपयुक्त माना जाता रहा है। क्योंकि प्रजातंत्र में जनता की कार्यशक्ति पनपती है और कुंठा समाप्त होने लगती है। केवल प्रजातंत्र ही एक ऐसी व्यापक व्यवस्था है जिसमें राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्र समाविष्ट हो जाते हैं। प्रजातंत्र में (मानव) अधिकारों की सुरक्षा तथा स्वतंत्रता के महत्त्व को जाना गया है। सबके हितों का समान रूप से ध्यान रखना प्रजातंत्र की रीढ़ है। इस रीढ़ के बल पर प्रजातंत्र खड़ा हो सकता है और सफल हो सकता है।

प्रजातंत्र में दो या दो से अधिक दलों में से अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार जनता को होता है ताकि किसी पार्टी विशेष का नाजायज़ दबाव न पड़े। चुने गए प्रतिनिधियों को शासन चलाने का अधिकार सौंपा जाता है। ग्राम पंचायत, नगर निगम, विधान सभा, राज्य सभा, संसद सभी को जनता निर्वाचित करती है। प्रत्येक नागरिक को वोट देने का (मानव) अधिकार प्राप्त है। वोट द्वारा प्रति पाँच वर्ष के बाद जनता सरकार चुनती है। आवश्यकता पड़ने पर मध्यावधि चुनाव भी करवाए जा सकते हैं। सरकार में कार्यकुशलता को प्रधानता दी जाती है न कि तानाशाही को। कोई भी निर्णय एकपक्षीय नहीं होता।

हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। यही स्थिति आधुनिक प्रजातंत्र की है। कुछ लोग नेताओं की छिछलेदारी करने या नीचा दिखाने में लगे रहते हैं। नेताओं के चरित्र को उछालने या असत्य बातें फैलाने में आनंद लेते हैं। अराजकता की स्थिति कभी भी उत्पन्न हो सकती है। बार-बार चुनाव होने से ख़र्च बहुत होता है। समय भी नष्ट होता है। कार्य की गति भी धीमी पड़ जाती है। जनता का समर्थन चाहे किसी भी दल को प्राप्त हो, देश की समस्याओं के प्रति तो ध्यान हट जाता है। कुछ लोग प्रजातंत्र में रिश्वतख़ोरी और भ्रष्टाचार के आरोप लगाते हैं। उनका विचार है कि ये दोष अन्य प्रकार की शासन व्यवस्था में कम पाए जाते हैं। मुद्रा स्फीति का दोष भी प्रजातंत्र शासन व्यवस्था पर लगाया जाता है, प्रजातांत्रिक व्यवस्था में पूर्ण उत्तरदायित्व निर्धारित करना कठिन होता है। कुछ राजनीतिज्ञों की धारणा है कि इस शासन व्यवस्था में नीति निर्धारण करना कठिन होता है। प्रतिनिधि सदा समाचार-पत्रों आदि के दबाव के कारण सदा स्वतंत्र नहीं रहते। आर्थिक असमानताओं को भी नकारा नहीं जा सकता। निर्वाचन कार्य में आर्थिक असमानता के कारण पूँजीपति व्यय में सहयोग तो देते हैं परंतु सरकार पर उचित या अनुचित दबाव भी डाल सकते हैं।

कई कठिन दौरों से गुज़रने के बाद राजनीतिक दलों की बहुलता के बावजूद भारतीय राजतंत्र सफल सिद्ध हुआ है। प्रजातंत्र को जीवित रखने के लिए राजनीतिक संगठन में आए दोषों को दूर करना होगा। सीज़र, हिटलर ओर मुसोलिनी सबने प्रजातंत्र के आगे घुटने टेक दिए। जनता की स्वतंत्र होने की इच्छा को दबाना कठिन होता है। आज के युग में प्रजातंत्र को सर्वोत्तर शासन-पद्धति मानी जा रही है, इसमें संदेह नहीं।

भारत एक प्रजातांत्रिक राज्य है जिसका एक लिखित संविधान है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् 1950 में भारत का संविधान लागू हुआ। संविधान ने पुलिस तथा क़ानून व्यवस्था पर कार्य

राज्यों को सौंपा, प्रत्येक राज्य का अपना पुलिस बल है और राज्य सरकारों ने क़ानून व्यवस्था को बनाए रखने का कार्य पुलिस बल को सौंपा है। संविधान द्वारा उल्लेखित जिम्मेदारियों को निभाने के लिए मार्गदर्शन हेतु केंद्र द्वारा निम्नलिखित पुलिस दलों का गठन किया गया है --

केंद्रीय रिज़र्व पुलिस बल (सी.आर.पी.एफ.), भारत रिज़र्व पुलिस, सीमा सुरक्षा बल (बी. एस.एफ.), भारत तिब्बत सीमा पुलिस (आई.टी.बी.पी.), असम राइफल्स, रेलवे सुरक्षा बल (आर. पी.एफ.), केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल (सेंट्रल इंडस्ट्रियल सिक्युरिटी फोर्स), केंद्रीय न्याय वैद्यक विज्ञान प्रयोगशाला, अपराध शास्त्र एवं विधि विज्ञान संस्थान, केंद्रीय गुप्तचर विभाग (इंटेलिजेंस ब्यूरो) या आसूचना ब्यूरो, नेशनल पुलिस अकादमी (एन.पी.ए.), राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एन.सी.आर.बी.), पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो (ब्यूरो ऑफ पुलिस रिसर्च एंड डेवलपमेंट), केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी.बी.आई.) अंतरराष्ट्रीय पुलिस संगठन (इंटरपोल) तथा होमगार्ड।

प्रत्येक पुलिस दल का कार्यक्षेत्र एवं उत्तरदायित्व की सीमा निर्धारित करना कठिन कार्य है। शासन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ पुलिस का उत्तरदायित्व न हो। एक इंजीनियर का उत्तरदायित्व है मशीनों का रख-रखाव व उससे संबंधित कार्य। एक डॉक्टर का दायित्व है मरीज़ों को देखना। लेकिन पुलिस को क़ानून एवं व्यवस्था, अपराधों की रोकथाम तथा अपराधियों की गिरफ़्तारी, जुर्म, सभाओं, सिनेमा, बाज़ारों, यातायात नियंत्रण, रेलवे, सीमा सुरक्षा, सार्वजनिक संपत्ति के रख-रखाव, बाटों और मापों का परीक्षण, वी.आई.पी. सुरक्षा, सरकारी मुद्रा व टिकटों की जालसाज़ी, मादक पदार्थों और तस्करी पर रोक, अनैतिक स्थानों पर निगरानी, घायलों के प्राथमिक उपचार, शव-परीक्षण आदि सभी स्थानों पर उत्तदायित्व निभाना होता है। वास्तव में पुलिस के उत्तर दायित्व इतने अधिक होते हैं कि उनका पूर्ण विवरण नहीं दिया जा सकता। परिस्थिति को भाँप कर उत्तरदायित्व का निष्ठा से पालन करने से देश में आंतरिक सुरक्षा कायम रह सकती है।

स्वतंत्र समाज में विडंबना यह है कि हर व्यक्ति अधिकारों के प्रति जागरुक है, कर्त्तव्यों की बात कोई नहीं करता, स्वतंत्रता का ग़लत अर्थ लिया जाता है। भ्रष्टाचार, प्रलाप और स्वेच्छाचारिता प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई पड़ती है। औषधियों तक में मिलावट, मुद्रा स्फीति, भ्रष्टाचार, बेईमानी, निरीह प्राणियों का वध, आतंक, अशांति, सांप्रदायिक झगड़े, हिंसा, प्रलोभन, हड़तालें, बाहरी हस्तक्षेप, व्यभिचार हत्याएँ, आत्म-हत्याएँ, भाषायी झगड़े, अस्पृश्यता, सूखा, बाढ़, उपद्रव, परीक्षाओं में नक़ल, बसें जलाना, सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी संपत्ति को क्षति पहुँचाना, जनसंख्या का विस्फोट, नैतिकता का ह्रास, दुश्चरित्रता, दहेज की ख़ातिर बहुएँ जलाना, शिक्षा का अभाव, बेकारी, क़ीमतों में वृद्धि, आवश्यक वस्तुओं में कमी, पुलिस के प्रति उपेक्षा और नफ़रत, असंतोष की ज्वाला -- यह है आधुनिक भारतीय समाज का स्वरूप।

''मानव एक सामाजिक प्राणी है जो समाज में रहना पसंद नहीं करता वह या तो देवता है या पशु।'' -- अरस्तु

समाज में रह कर मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। विकास की गति को यथासंभव बनाए रखने के लिए समाज की समस्याओं पर नियंत्रण तथा समाज विरोधी तत्त्वों

से समाज की रक्षा करना पुलिस का कार्य है। समाज में समाज विरोधी तत्त्वों का होना अप्राकृतिक नहीं है। इन्हीं से निपटने का उत्तरदायित्व पुलिस का होता है। पुलिस को आज के प्रजातांत्रिक समाज में अपने उत्तरदायित्वों को निभाना अत्यधिक कठिन होता है। पुलिस को प्रजातंत्र की रक्षा करने के साथ-साथ समाज का सेवक बन कर उत्तरदायित्व निभाना होता है, शासक बन कर नहीं। अरस्तु के अनुसार पुलिस अपनी सेवा, बलिदान, सहनशीलता द्वारा ही जनता का विश्वास प्राप्त कर सकती है और एक ऐसे समाज की स्थापना में योगदान कर सकती है जिस में भय और अशांति का अभाव हो। बंदूक से निकली गोली किसी का सीना चीर सकती है परंतु मुँह से निकली बोली आवाम का दिल जीत सकती है।

मानव मूल्यों को समझने के लिए पुलिस को मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अपराधशास्त्र आदि विषयों का ज्ञान भी कराया जाना चाहिए। पुलिस के सिपाही जनता के क़रीब रहते हैं, विशेष कर भीड़-भाड़ वाले स्थानों पर अधिकारियों को चाहिए कि उन्हें जनता से भद्र-व्यवहार की शिक्षा दें, सांप्रदायिक झगड़ों व आंदोलनों में निष्पक्ष रह कर झगड़ों का निपटान करने की सीख दें। पुलिस के लिए एक आधार संहिता बनाई गई है, इस संहिता को धार्मिक ग्रंथ मान कर वफ़ादारी से पालन करना चाहिए।

पुलिस और जनता में समन्वय भी ज़रूरी है। पुलिस की भी अपनी समस्याएँ हैं। पुलिस बल संख्या में कम हैं और अपराध बढ़ रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में एक पुलिस थाने के अंतर्गत कई गाँव आते हैं, जबकि पुलिस कर्मचारी ऐसे थाने में बहुत कम होते हैं जिन्हें औसत आबादी 10-12 लाख में शांति व्यवस्था को कायम करने के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है। पुलिस पर लाँछन लगाया जाता है कि वह मौके पर देर से पहुँचती है। बहुत से थानों पर टेलीफ़ोन व्यवस्था नहीं है। टेलीफ़ोन यदि हैं तो काम नहीं करते। गाँवों में तो कच्ची सड़कों के कारण ख़राब मौसम में साइकिल तक से वाँछित क्षेत्र में पहुँचना कठिन हो जाता है। थाना गाँवों से दूर होता है। शहरों में जनसंख्या अधिक होने से पुलिस बल अनुपात में कम रह जाता है।

अपराधियों के पास पुलिस से अधिक आधुनिक शस्त्र होते हैं। अपराधी अपराध करके आसानी से भाग भी सकता है। पुलिस की तो अपराधी के सामने कभी-कभी ऐसी दशा हो जाती है -- 'तू डाल-डाल तो मैं पात-पात।'

अवाँछित हस्तक्षेप से पुलिस को अपने उत्तदायित्व निभाने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। विभिन्न पदों के राजनीतिक नेता पुलिस पर हावी रहते हैं और उसके कार्यों में दखल देते हैं। गवाही भी बदल जाती है। कई अपराधी अपराध करने के बाद आसनी से बच निकलते हैं और दंड न पाकर उनकी अपराधवृत्ति और अधिक फलने-फूलने लगती है। जनता का पुलिस से विश्वास उठ जाता है। पुलिस और जनता के संबंध कटु ही रह जाते हैं। प्रेस भी पुलिस के विरुद्ध ख़बरों को बढ़ा-चढ़ा कर छापती है, परंतु प्रशंसा करने वाले मित्र भी नहीं हैं।

जनता को भी चाहिए कि पुलिस की भूमिका को स्वीकारें, उसे भय या नफ़रत से न देखकर उसे अपना मित्र समझें, उन्हें भी समाज के एक अंग की भाँति आदर दें। वे भी समान

रूप से देश के नागरिक हैं। परिवार का भरण-पोषण तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें भी संघर्ष करते देखा गया है। पुलिस एवं जनता की सोच की खाई कम करने में अभी और अधिक प्रयास करने होंगे। पुलिस में उत्साहवर्धक नेतृत्व भी ज़रूरी है। अपने अधीनस्थों को प्रेरणा देने वाला और व्यक्तित्व के उदाहरण प्रस्तुत करने का अपना महत्त्व है। अपनी और अपने विभाग की प्रतिष्ठा स्वयं बनानी होगी।

सुरक्षा व्यवस्था चाहे कितनी भी अच्छी हो पर्याप्त नहीं हो सकती। विपरीत परिस्थितियों में जान हथेली पर रखकर पुलिसकर्मी अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। अति दुर्गम क्षेत्र केदारनाथ में हज़ारों लोगों को बचाया था। अमरनाथ यात्रा में सन् 2013 में जान की परवाह न करते हुए कर्त्तव्य पालन किया। 14 फरवरी, 2014 को कश्मीर की बाढ़ में अपने कुशल प्रशिक्षण का परिचय दिया। कश्मीर में पत्थरबाज़ों के बीच हालात कई बार बेकाबू हुए परंतु ऐसी स्थिति में भी मानव मूल्यों की रक्षा की। आतंकियों को उन्हीं की भाषा में धूल चटा दी पर मानव अधिकारों का उल्लंघन नहीं किया। आशा और विश्वास का वातावरण बनाए रखा। जम्मू कश्मीर और उत्तर पूर्वी राज्यों में चरम स्तर पर उग्रवाद होता था। आज स्थिति वैसी नहीं है। मानव मूल्यों को समझते हुए एक तथा दूसरे के विचारों को समझे हुए आज जम्मू कश्मीर और पूर्वी राज्य भारत के नक्शे में है।

मानव अधिकारों की रक्षा के लिए यह ध्यान रखना होगा कि गोली किसी निर्दोष को न लगे। ऐसा उग्रवादियों को नहीं सोचना पड़ता। मानव अधिकारों से पुलिस वाले उतना डरे हुए हैं कि साँप मरे या न मरे लाठी नहीं टूटनी चाहिए, नहीं तो बेचारों की नौकरी पर बन सकती है। पुलिस से मौलिक अधिकार छीने गए हैं ताकि देश की रक्षा कर सकें और मर्यादा को बना सकें। भेड़िए कई बार छाती पर चढ़ जाते हैं -- 'अफजल हम शर्मिंदा हैं, तेरे क़ातिल ज़िंदा हैं। कौन है क़ातिल? उच्चतम न्यायालय या भारत का संविधान?', 'भारत तेरे टुकड़े होंगे' मानव अधिकार पुलिस के पक्ष में आते नज़र नहीं आए। पुलिस के पक्ष में और भी कोई खड़े नहीं हुए। चर्चाएँ ख़ूब चलीं।

14 फरवरी, 2019 को तिरंगा फहराने से ज्यादा दफ़नाने और ताबूत पर डालने का काम आया। क्षत-विक्षत लाशों के दृश्यों से हृदय काँप उठता था। उग्रवाद और आतंक से लड़ना युद्ध से कम नहीं होता। यह क्रिकेट मैच नहीं है कि आज हारे हैं तो कल जीतेंगे। रोज़ जीतना है। प्रशिक्षण में जवान इतने बचे हुए होते हैं कि प्रभावी ढंग से कार्य करते हैं। वे ड्यूटी पर हैं तो हम चैन की साँस लेते हैं। देशभक्ति उनकी जीवन की हर साँस में बसी हुई है।

अटल बिहारी जी के शब्दों में, ''यह बंधन की भूमि है, अभिनंदन की भूमि हैं, यह तर्पण की भूमि है, अर्पण की भूमि है। इस का कंकड़-कंकड़ शंकर है, बिंदु-बिंदु गंगा जल है जिसमें इसके लिए मरेंगे, अगर कोई गंगा में बहती हुई अस्थियों से कान लगाकर सुनेगा तो एक ही आवाज़ आएगी -- भारत माता की जय।''

❑

संदर्भ

1. वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनी कालीन भारत वर्ष, मोतीलाल, बनारस
2. इंडियन पुलिस जरनल, सूचना प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र, मेहरचंद लक्ष्मणदास, दिल्ली, 1970
4. गुरमुख निहाल सिंह, राजनीति विज्ञान एवं संगठन, किताब महल प्रा.लि., इलाहाबाद
5. कालिदास, अभिज्ञान शाकुंतलम्
6. रूप सिंह चंदेला, समस्या और समाधान, किताब घर, दिल्ली, 1993
7. काशीप्रसाद जायसवाल, हिंदू पॉलिटी, इंडियन प्रेस लि., 1942
8. प्रकाशचंद जैन, अपराध अन्वेषण और अभियोजन, विनती प्रकाशन, अजमेर, 1989
9. त्रिपुरेश त्रिपाठी, पुलिस विज्ञान, पुलिस प्रशिक्षण महाविद्यालय, (प्रथम संस्करण), मुरादाबाद, 1990
10. पुलिस विज्ञान पत्रिका, बी.पी.आर.डी., गृह मंत्रालय, नई दिल्ली
11. डी.एस. बघेल, अपराध शास्त्र, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1970
12. मनुस्मृति
13. भीष्मपाल, भारत में केंद्रीय पुलिस संगठन, पुलिस अनु. वि. ब्यूरो, 1989
14. भोलानाथ मल्लिक, पुलिस एक दार्शनिक विवेचन
15. महाभारत
16. यूनेस्को कूरियर
17. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, क्राइम इन इंडिया, गृह मंत्रालय
18. परिपूर्णानंद वर्मा, भारतीय पुलिस, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1984
19. परिपूर्णानंद वर्मा, अपराध के नए आयाम तथा पुलिस की समस्याएँ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1998
20. ब्रजमोहन शर्मा, भारतीय पुलिस, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1989
21. देवशरण श्रीवास्तव, विकासशील समाज में समसामयिक पुलिस की भूमिका, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, 1990
22. पुलिस मैनुअल्स और रिपोर्टें आदि।

डॉ. चंद्र प्रकाश

दिव्यांगजन एवं मानव अधिकार : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

प्रस्तावना

सौरमंडल में पृथ्वी ही एकमात्र ग्रह है जिसमें मानवीय जीवन पाया जाता है और इस धरा पर मानव प्रकृति की अनुपम कृतियों में सबसे प्रमुख है। पृथ्वी पर मनुष्य ही एकमात्र ऐसा जीव है जिसने अपनी वृद्धि का सदुपयोग कर मानवीय समाज की रचना कर उसे क्रमिक रूप से उत्तरोत्तर विकसित करने का कार्य किया। प्रारंभिक मानव पशुओं के समान जंगली जीवन व्यतीत करता था, परंतु आग, पहिये और भाषा की खोज के साथ ही उसका घुमंतु जीवन में आमुलचूल परिवर्तन होने प्रारंभ हो गए। मनुष्य अपने क्रमिक विकास के माध्यम से आधुनिक मानव बन सका और जिसमें निरंतर वृद्धि होती जा रही है। मानव के क्रमिक विकास का ही परिणाम है कि वो आज चंद्रमा, मंगल आदि ग्रहों में अपनी पहुँच संभव कर पाया है। प्रकृति में जीव-जंतुओं का विकास भी क्रमिक विकास का ही परिणाम है। संसार के सभी जीव किसी-न-किसी रूप में विशिष्ट हैं और मानव भी प्रकृति का अंग होने के कारण विशिष्ट है, परंतु मनुष्यों में प्रजातिगत भेद स्पष्टतः दिखाई देता है। मानवों में रंग-रूप, शारीरिक बनावट, भाषा आदि भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु पर निर्भर करती है। साथ ही मानवीय शारीरिक विकास प्रकृति, जलवायु के साथ-साथ मानवीय गतिविधियों पर आश्रित है एवं मानवीय गतिविधियों का ही परिणाम है कि कुछ व्यक्ति जन्म से ही दिव्यांग तो, कुछ जन्मोपरांत दुर्घटना आदि से आशक्त और दिव्यांग हो जाते हैं। इस धरती पर अनेक मानवीय प्रजातियाँ निवास करती हैं और प्रत्येक प्रजाति में व्यक्ति को जीवनयापन हेतु कुछ आवश्यक मुख्य (मूलभूत) मौलिक अधिकारों की आवश्यकता पड़ती है। निःशक्त व्यक्ति, को प्रायः समाज में जीवनयापन हेतु दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ती है, एक तरफ वह स्वयं की दिव्यांगता से लड़ा रहा होता है, वहीं दूसरी तरफ वह समाज के साथ सामंजस्य बिठाने का काम करता है। ऐसे में मानवीय अधिकारों का महत्त्व और अधिक प्रबल हो जाता है।

दिव्यांगता किसी भी समाज के लिए एक विचारणीय एवं सोचनीय विषय बन गया है, विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देश में यह एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है। पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था में दिव्यांगों को अनेक तरह की सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक,

सांस्कृतिक एवं धार्मिक असमानताओं और भेदभाव का सामना करना पड़ता है। प्रायः लोग उन्हें हेयता की दृष्टि से देखते हैं तथा उनसे सदैव सामाजिक-दूरी बनाए रखने का प्रयास करते हैं। यहाँ तक की उनके कुटुंब के सदस्यों द्वारा भी उनके साथ सद्‌व्यवहार नहीं किया जाता है और कभी-कभी उन्हें घर से निकाल दिए जाने की घटनाएँ समाचार-पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। दिव्यांगों को परिजनों, पड़ोसियों, सहपाठियों, अस्पतालों, यात्रा, आवागमन के साधनों आदि में प्रायः असमानता, भेदभाव, अपमान एवं परेशानियों का सामना करना पड़ता है। अधिकांश स्थितियों में दिव्यांगों को अपने अधिकारों का पता ही नहीं होता अथवा पता होने पर भी वे उसका लाभ नहीं उठा पाते हैं। इन्हीं सब कारणों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध को निम्न बिंदुओं पर केंद्रित किया गया है --

1. दिव्यांगता, दिव्यांगता के प्रकारों एवं दिव्यांगजनों की समस्याओं का अध्ययन करना।
2. दिव्यांगों हेतु निर्मित क़ानूनों एवं संवैधानिक प्रावधानों तथा प्रदत्त मानवीय अधिकारों का अध्ययन करना। साथ ही यह भी ज्ञात करना कि सरकारों द्वारा उनके उत्थान हेतु क्या-क्या प्रयास किए गए हैं एवं वे इन प्रयासों से कितने लाभान्वित हुए हैं, इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

दिव्यांगता : दिव्यांगता आधुनिक समाज की प्रमुख एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है। यह समस्या में उतनी ही प्राचीन है जितनी की मानव सभ्यता। आरम्भिक मानव जंगली जीवन व्यतीत करता था और सभ्यता के विकास के साथ-साथ वह विकसित होता गया एवं उसकी विकलांगता भी वृद्धि होती गई। आरंभिक मानव में संभवतः जन्मना विकलांगता अधिक थी परंतु नवीन आधुनिक सुख-सुविधाओं, तकनीकी साधनों एवं मशीनों के उपयोग से मानव ज्यों-ज्यों साधन संपन्न होता गया त्यों-त्यों समय के साथ मनुष्यों में विकलांगता की दर में भी वृद्धि होती गई तथा समाज में एक गंभीर समस्या का रूप लेती गई। आम बोलचाल की भाषा में शारीरिक-मानसिक रूप से विक्षिप्त लोगों के लिए प्रायः निःशक्त, विकलांग, हैंडीकैप, फिजिकली चैलेंज, डिसएब्ल एवं दिव्यांग जन जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। अमेरिका की डेमोक्रेटिक नेशनल कमेटी ने शारीरिक रूप से विकालांग लोगों के लिए हैंडिकैप की जगह 'डिफरेंटली एबल्ड' शब्द का प्रयोग किए जाने का सुझाव दिया और इसी के परिणाम स्वरूप भारत में दिसंबर, 2015 से विकलांग शब्द के स्थान पर दिव्यांग शब्द प्रयोग किए जाने का चलन प्रारंभ हुआ। दिव्यांगजनों के प्रति संवेदना, आत्म-सम्मान एवं उनके कल्याण तथा सामाजिक समरसता हेतु 1992 से प्रत्येक वर्ष 03 दिसंबर को विश्व विकलांग दिवस (World Disability Day) मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र आम सभा द्वारा वर्ष 1981 को 'विकलांगजनों के अंतरराष्ट्रीय वर्ष' घोषित किया एवं साथ ही वर्ष 2007 को 'International Day of Disabled Persons' के रूप में मनाया गया।

दिव्यांगजन के अधिकार अधिनियम, 2006 के अनुसार, 'दिव्यांग से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो दीर्घावधि तक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अथवा ग्राहय संबंधी अशक्तता का शिकार

रहा है और जो बाधाओं और रुकावटों के रूप में समाज के साथ उसकी पूर्ण सहभागिता को प्रभावित करती है।'

विकलांग व्यक्तियों की श्रेणियाँ : निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1955 (1996 का अधिनियम संखयक 1) के 2 (झ) में वर्णन है --

'निःशक्तता' से अभिप्रेत है -- 1. अंधता, 2. कम दृष्टि, 3. कुष्ठ रोग युक्त, 4. श्रवण शक्ति का ह्रास, 5. चलन निःशक्तता, 6. मानसिक संदता एवं 7. मानसिक रूग्णता निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1955 के प्रावधानों और बेहतर क्रियान्वयन को सुनिश्चित करके, उन्हें सुचारू बनाने के उद्देश्य से संसद द्वारा 28 दिसंबर, 2016 को दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 को अधिनियमित एवं 19 अप्रैल, 2017 को लागू किया गया। इस अधिनियम में दिव्यांगता को एक विकसित और गतिशील अवधारणा के आधार पर परिभाषित किया गया है। नये क़ानून में दिव्यांगजनों के लिए विविध अधिकारों और भत्तों की व्यवस्था की गई है। इन अधिकारों और भत्तों में समानता व भेदभाव-रहित, सामाजिक जीवन, अव्यवहार और अमानवीय व्यवहार से सुरक्षा, न्याय तक पहुँच, विधिक क्षमता आदि शामिल हैं।

सामाजिक न्याय एवं निःशक्तजन कल्याण विभाग द्वारा दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के अंतर्गत जागरूकता के लिए 21 प्रकार की विकलांगताओं कों शामिल किया गया है। विकलांगता के मानक हर देश के अलग-अलग हो सकते हैं, परंतु भारत में ज़रूरतमंद लोगों को विकलांगता लाभ प्रदान करने के लिए सरकार ने इस अधिनियम से पूर्व में प्रचलित 7 प्रकार की दिव्यांगताओं में वृद्धि कर 21 प्रकार की दिव्यांगताओं (अंधापन, कम दृष्टि, कुष्ठ रोग से पीड़ित व्यक्ति, बधिरता, लोकोमोटर विकलांगता, बौनापन, बौद्धिक अक्षमता, मानसिक बीमारी, ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर, सेरेब्रल पाल्सी, मुस्कुलर डिस्टॉफी, क्रोनिक न्यूरोलॉजिकल स्थितियाँ, विशिष्ट सीखने की अक्षमताएँ, मल्टीपन स्केलेरोसिस, भाषण एवं भाषा विकलांगता, थैलेसीमिया, हीमोफिलिया, सिकल सेल्स रोग, बधिर-अंधता सहित बहु-विकलांगता, तेजाब हमले के शिकार, पार्किंसंस रोग आदि)[1] को सम्मिलित किया हैं। भारत में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 को बदलती परिस्थितियों में एक प्रतिमान विधान की संज्ञा दी जाती है, जिसने देश में लाखों दिव्यांगजनों के जीवन में परिवर्तन एवं रोशनी लाने का काम किया है। इस अधिनियम के तहत पुलिस, अधिकारियों के दायित्वों, संरक्षण एवं सुरक्षा के निर्धारण के साथ-ही-साथ मतदान अधिकार (घर से मतदान स्थल तक लाने-ले जानें), प्रजनन अधिकार, विधिक सहायता जैसे प्रावधान किए गए हैं। इसी का परिणाम है कि आज सभी सरकारी-गैर-सरकारी संस्थाओं, कार्यालयों, रेलवे-बस स्टेशनों, अस्पतालों, शिक्षण संस्थानों में इनके लिए विशेष व्यवस्था जैसे व्हील चेयर, रैंप, शौचालयों में विशेष उपकरण लगे दिखाई देते हैं।

सन् 2011 की जनगणना में सम्मिलित दिव्यांगता एवं दिव्यांगजनों का विवरण2

क्र.	दिव्यांगता	जनसंख्या (लाख में)
1.	दृष्टि बाधित	50, 33, 431
2.	श्रवण बाधित	50, 72, 914
3.	वाक् बाधित	19, 98, 692
4.	अस्थि बाधित	54, 36, 826
5.	मानसिक मंदता	15, 05, 964
6.	मानसिक रूग्णता	7, 22, 880
7.	कोई अन्य	49, 27, 589
8.	विविध दिव्यांगताएँ	21, 16, 698
	कुल दिव्यांग जनसंख्या	**26, 814, 994**

राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय, सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 31 मार्च, 2021 को प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में विकलांग व्यक्ति को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है जो लंबे समय तक 'शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक या संवेदी हानि' का सामना करता है। जनगणना 2011 का हवाला देते हुए, रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में 26.8 मिलियन विकलांग व्यक्ति हैं जो कुल जनसंख्या का 2.21 प्रतिशत है। 26. 8 मिलियन दिव्यांग व्यक्तियों में से 14.9 प्रतिशत पुरुष एवं 11.9 प्रतिशत महिलाएँ दिव्यांग हैं। रिपोर्ट के अनुसार 26.8 मिलियन दिव्यांग व्यक्तियों में से 18 मिलियन दिव्यांग व्यक्ति (विकलांग आबादी का 69 प्रतिशत) ग्रामीण भारत में रहते हैं और लगभग 8 मिलियन (विकलांग आबादी का 31 प्रतिशत) शहरी क्षेत्र में निवास करते हैं। रिपोर्ट बताती है कि भारत में दिव्यांग जनसंख्या का 54.4 प्रतिशत (लगभग 1.46 करोड़ दिव्यांग) साक्षर हैं एवं दिव्यांग साक्षरता के मामले में भी केरल (70.8 प्रतिशत) प्रथम स्थान पर है, जबकि अरूणाचल प्रदेश में सबसे कम दिव्यांग साक्षर (38.8 प्रतिशत) हैं।

मानव अधिकार

'वसुधैव कुटुंबकम् एवं सर्वे भवंतु सुखिनः' जैसे आदर्श ऋचाओं वाले भारतीय समाज में अतीत से ही मानवीय दृष्टिकोण को स्पष्टतः देखा जा सकता है जिसमें विश्व को एक कुटुंब और सबके सुखी जीवन की कामना की गई है। प्राचीन यूनानी दार्शनिक प्लेटो, अरस्तू ने समाज में न्याय के महत्त्व को बतलाया है। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ समाज में शोषण,

अत्याचार, अपमान एवं दमन आदि में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप मानव अधिकार जैसे विषय पर गंभीर चिंतन प्रारंभ हुए। मानव अधिकार ऐसे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव प्राणी होने के नाते समान रूप से प्राप्त होते हैं, चाहे व्यक्ति किसी भी क्षेत्र, देश अथवा राज्य का निवासी हो अथवा उसका लिंग, वर्ग जाति, व्यवसाय, सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति, धार्मिक-सांस्कृतिक प्रस्थिति कुछ भी हो। मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 2 (घ) के अनुसार, 'मानव अधिकार से अभिप्राय व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं गरिमा से संबंधित उन अधिकारों से है जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत हैं या अंतरराष्ट्रीय करारों में सम्मिलित हैं और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं।[3] मानव अधिकार ही समाज में ऐसा वातावरण उत्पन्न करते हैं, जिसमें सभी व्यक्ति समानता के साथ, निर्भीक रूप से और मानव गरिमा के साथ जीवन व्यतीत कर पाते हैं। हेरॉल्ड लास्की के अनुसार, 'अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं जिनके अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर पाता'[4] अर्थात् मानव के व्यक्तित्व विकास में अधिकार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मानव अधिकार सार्वभौमिक रूप से लागू होते हैं क्योंकि ये अधिकार सभी व्यक्तियों को, सभी समय पर, सभी स्थितियों में प्राप्त होते हैं। प्रत्येक मानव प्राणी इन अधिकारों का हकदार है, क्योंकि ये वे अधिकार हैं जो उसे मानव होने के नाते जन्म लेने के आधार पर मिले हुए हैं। ये अधिकार मनुष्य के प्रकृति में निहित हैं और किसी रीति-रिवाज, परंपरा, क़ानून, राज्य, शासक, संसद या किसी अन्य संस्था की देन नहीं है। ये वे अधिकार है जो प्रत्येक मनुष्य को प्रकृति प्रदान करती है। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 16 जनवरी, 1941 को 'मानव अधिकार' शब्द का प्रयोग किया। मानव अधिकारों में वे सभी तरह सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक, नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार सम्मिलित हैं जिनकी आवश्यकता सभी मनुष्यों को समान रूप से होती है तथा जिनके अभाव में एक व्यक्ति के सामान्य जीवन की आशा नहीं की जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर (संविधान) को मानव अधिकारों का 'प्रथम अंतरराष्ट्रीय दस्तावेज़' कहा जा सकता है। 16 फरवरी, 1946 को मानव अधिकार आयोग की स्थापना के पश्चात मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का ड्राफ़्ट तैयार किया गया, जिसे महासभा द्वारा 10 दिसंबर, 1948 को स्वीकार किया गया और इसी के परिणाम स्वरूप प्रत्येक वर्ष 10 दिसंबर को 'मानव अधिकार दिवस' मनाया जाता है।

आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966[5] में प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक अधिकारों के तहत किसी भी व्यवसाय को चुनने, काम करने, कार्य के न्यायसंगत और अनुकूलन, श्रम संघ बनाने एवं उसमें सम्मिलित होने का अधिकार प्रदान किया गया है। प्रसंविदा में सामाजिक अधिकार के तहत सामाजिक सुरक्षा, जीवन हेतु आवश्यक साधनों, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य एवं शिक्षा के अधिकार सम्मिलित हैं। सांस्कृतिक

आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को सांस्कृतिक गतिविधि में भाग लेने, वैज्ञानिक प्रगति और उसके उपयोजन के लाभों को उपभोग करने, साहित्यिक रचना के रचनाकार को उसका लाभ देने का अधिकार प्राप्त है। साथ व्यक्ति को नागरिक अधिकारों के तहत जीने का, अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने, दासता के विरुद्ध, स्वतंत्रता, न्यायालयों के समक्ष समानता, विचार एवं अंतःकरण की स्वतंत्रता के अधिकार का प्रावधान इस प्रसंविदा में किया गया है। राजनीतिक अधिकार वे अधिकार हैं जिनका उद्देश्य व्यक्ति को राज्य के राजनीतिक जीवन में भागीदारी प्रदान करना है और ये अधिकार राज्य द्वारा केवल अपने नागरिकों को ही प्रदान किए जाते हैं। इन अधिकारों के तहत अभिमत और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण सम्मेलन, संघ बनाने की स्वतंत्रता, और मत तथा निर्वाचित होने का अधिकार सम्मिलित हैं। निःशक्तजन भी मानव समाज का ही अंग है और समाज में रहकर ही जीवनयापन करते हैं, इसीलिए इन्हें भी ये अधिकार स्वतः जन्म से प्राप्त होते हैं।

भारतीय संविधान एवं दिव्यांगों के अधिकार : भारतीय संविधान विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान वाला देश एवं प्रजातांत्रिक राष्ट्र है। भारत का संविधान सभी भारतीय नागरिकों पर एक समान रूप से लागू होता है। भारतीय संविधान सभा के मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर स्वयं शोषित वर्ग से आते थे एवं उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त सभी तरह के सामाजिक-आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक असमानताओं, शोषण, अस्पृश्यता और निर्योग्याताओं को झेला था तथा इसी स्वानुभूति का परिणाम था कि वे समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व को समाज के लिए अपरिहार्य मानते थे। इसी कारण उन्होंने समाज में सभी व्यक्तियों को एक समान अधिकार हेतु संविधान में प्रावधान किए। भारत के संविधान में विकलांगता को परिभाषित नहीं किया गया है, परंतु भारतीय संविधान द्वारा लिंग, जाति, मूल, जन्म, निवास-स्थान आदि को महत्त्व नहीं देते हुए सभी भारतीय नागरिकों हेतु एकसमान मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया है।

- **अनुच्छेद 13 :** भारतीय संविधान के इस अनुच्छेद के तहत गणराज्य स्थापना से पहले भारतीय समाज में व्याप्त सभी तरह की रूढ़ियों को समाप्त कर दिया गया। भारतीय समाज में अतीत से ही अंधविश्वास और रूढ़ियों की अधिकता के कारण दिव्यांगजन भी इनसे प्रभावित हुए बिना रह सके।

समता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18) : भारतीय संविधान में सभी नागरिकों के लिए समान अधिकारों का प्रावधान किया गया है तथा दिव्यांग भी समाज के सदस्य होने के कारण उन्हें भी सभी व्यक्तियों के समान मानव अधिकार प्राप्त हैं।

- **अनुच्छेद 14 : विधि के समक्ष समता :** राज्य, भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति की विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।
- **अनुच्छेद 15 : धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध :** संविधान में प्रावधान किया गया है कि कोई भी व्यक्ति या समूह दूसरे व्यक्यि

अथवा समूहों के प्रति धर्म, वंश, उसकी जाति, लिंग या जन्म स्थल के आधार पर किसी भी तरह का भेदभाव नहीं करेगा तथा संविधान सभी भारतीयों को समदृष्टि से देखता है। इस अनुच्छेद के 15(1) के अनुसार सरकार विकलांगों सहित किसी भी नागरिक के साथ जाति, धर्म, लिंग, मूल, जन्म-स्थान या इनमें से किसी आधार पर पर कोई विभेद नहीं करेगा। साथ ही इस अनुच्छेद के 15(2) के तहत किसी भी व्यक्ति को किसी सार्वजनिक स्थल, दुकान, होटल, रेस्तरां, मनोरजन स्थल पर प्रवेश से नहीं रोका जा सकता। उसे कुएँ, तालाब, स्नान घर, सड़क या किसी भी सार्वजनिक सुविधा के प्रयोग से वंचित नहीं किया जाएगा। इस अनुच्छेद में वर्णित सभी अधिकार निःशक्त लोगों पर भी सामान्य रूप से लागू होते हैं तथा कोई भी व्यक्ति उपरोक्त वर्णित अधिकारों के तहत दिव्यांगों को वंचित नहीं कर सकता है।

- **अनुच्छेद 16 : लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता :** संविधान का यह अनुच्छेद सभी व्यक्तियों को लोक नियोजन अथवा नियुक्ति के समय बिना किसी विभेद के समान अवसर प्रदान करता है। अनुच्छेद 16 (1) : राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करता है। इस अनुच्छेद के 16(2) में प्रावधान है कि राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, उद्‌भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उसके विभेद किया जाएगा।
- **अनुच्छेद 17 : अस्पृश्यता का अंत :** इस अनुच्छेद के तहत कोई भी व्यक्ति अस्पृश्य नहीं मान जाएगा तथा कोई भी व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति से अस्पृश्यता नहीं रख सकता। इसके तहत अस्पृश्यता का अंत किया जा चुका है तथा इस अनुच्छेद द्वारा छुआछूत को संज्ञेय अपराध माना गया है।
- **अनुच्छेद 19 :** सामान्य लोगों की तरह दिव्यांगों को भी विचार अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता है। इस अनुच्छेद के तहत 'सभी नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण और निरायुध सम्मेलन का, संघ बनाने, भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण, किसी भाग में निवास करने और बस जाने, कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार का अधिकार होगा।
- **अनुच्छेद 21 :** इस अनुच्छेद के अनुसार हर व्यक्ति को जीने का और स्वतंत्रता का अधिकार है तथा किसी दिव्यांग को मात्र उसकी दिव्यांगता के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता है। संविधान के 86वाँ संशोधन के अंर्तगत 2002 में अनुच्छेद 21क में 06 से 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा के अधिकार का प्रावधान किया गया है।
- **अनुच्छेद 23 : मानव के दुर्व्यापार और बलात्श्रम का प्रतिषेध :** मानव का दर्व्यापार और

बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात्श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है तथा इस उपबंध का कोई उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा। दिव्यांगों का भी मूल अधिकार है कि कोई उनसे बेगार नहीं ले सकता तथा कोई अनिवार्य सेवा मात्र विकलांगता के आधार पर अधिरोपित नहीं करेगा।

- **अनुच्छेद 24 : कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध :** चौदह से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जाएगा। यह अनुच्छेद जहाँ बालश्रम को रोकता है वहीं निःशक्त लोगों को भी सुरक्षा प्रदान करता है।
- **अनुच्छेद 25 : अंतःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता :** यह अनुच्छेद सभी भारतीयों को अंतःकरण की स्वतंत्रता और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक देता है। इस अनुच्छेद के तहत कोई व्यक्ति, किसी दिव्यांगजन को धार्मिक रूप से प्रताड़ित अथवा अंतःकरण और मानने से नहीं रोक सकता है। विकलांग व्यक्ति किसी भी धर्म में आस्था व्यक्त कर सकते हैं तथा वे अपने धर्म का प्रचार-प्रसार और धार्मिक गतिविधियों को करने के लिए स्वतंत्र हैं।
- **अनुच्छेद 29-30 : संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार :** संविधान सभी भारतीयों को संस्कृति एवं शिक्षा का एक समान अधिकार प्रदान करता है। 29(1) के तहत, भारत राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी विशेष लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा। 2. राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा। प्रकृति एंव सभी धर्मो के मूल में समस्त जीवों में एक आत्मा निवास करती है तथा सभी में समान प्रेम, दर्द/पीड़ा और भावनाएँ पाई जाती हैं। प्रकृति, जलवायु, भौगोलिक स्थिति के अनुरूप जीवों के आकार-प्रकार, बनावट आदि में अंतर होना लाजमी है, परंतु किसी भी जीव के साथ मात्र शारीरिक असमानता अथवा अपंगता के आधार पर अंतर करना वैज्ञानिकता नहीं हो सकती। विश्व के सभी मानवीय समाजों अथवा समुदायों में व्यक्तियों के बीच शारीरिक, मानसिक अथवा सामाजिक स्थिति के आधार पर प्रायः भेदभाव दृष्टिगोचर होता है जो उचित नहीं है। समाज में सभी व्यक्तियों को जीवन जीने का अधिकार प्राप्त है और यह अधिकार उन्हें प्रकृति प्रदान करती है। दिव्यांगजन भी मानवीय समाज का अंग होने के कारण उन्हें भी वे सभी मानवीय अधिकार प्राप्त हैं जो आमजन को प्राप्त हैं, परंतु मानवीय मानसिकता का परिणाम है कि वह मात्र अपंगता, निःशक्तता से दूसरे व्यक्ति का आंकलन करता है तथा उसकी दिव्यांगता के आधार पर भेदभावपूर्ण करता है। इसी के परिणाम स्वरूप समय-समय पर

दिव्यांगजनों के अधिकारों एवं कल्याण के लिए आवाज़ उठती रही है और सरकारों द्वारा इनके लिए अनेक क़ानूनी प्रावधान, संरक्षण के उपाय, कल्याणकारी योजनाएँ, विशेष सुविधाओं आदि की व्यवस्था की गई है।

दिव्यांगजनों के कल्याणार्थ विशेष प्रावधान : संविधान में समाज के कमज़ोर वर्गों के कल्याणार्थ अनेक प्रावधान किए गए हैं, परंतु निःशक्तजनों के लिए अलग से कोई प्रावधान नहीं किया गया है। सन् 1977 में पहली बार विकलांगों के लिए 'सी' और 'डी' श्रेणी की कुछ नौकरियों में 03 प्रतिशत आरक्षण देने का प्रावधान किया गया। इस तीन प्रतिशत में से नेत्रहीन, श्रवणहीन और अस्थिहीन दिव्यांगों को क्रमशः एक-एक सीट आरक्षित की गई एवं साथ ही नौकरी के लिए अधिकतम आयु-सीमा में 10 वर्ष की छूट दी गई।

दिव्यांगजनों के लिए विशेष रोज़गार केंद्र खोलने, व्यावसायिक पुनर्वास केंद्र खोलने हेतु भारत सरकार द्वारा समय-समय पर अनेक क़दम उठाए गए हैं। संसद द्वारा दिसम्बर 1995 में विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार, संरक्षण एवं पूर्ण सहभागिता) अधिनियम, 1995 पारित किया गया। इस अधिनियम के 14 अध्यायों में निःशक्तजनों को सामान्य व्यक्तियों के बराबर अधिकार प्रदान किए गए हैं। साथ ही इस अधिनियम द्वारा मुख्य आयुक्त का महत्त्वपूर्ण वैधानिक पदाधिकारी नियुक्त किए जाने का प्रावधान किया गया। सन् 1999 में राष्ट्रीय न्यास अधिनियम के तहत आत्मविमाह, मस्तिष्क पक्षाघात, मंदबुद्धि और बहु विकलांगता के शिकार व्यक्तियों के कल्याण के लिए नेशनल ट्रस्ट (राष्ट्रीय न्यास) का गठन किया गया है। इस न्यास का मूल उद्देश्य उक्त विकलांगता के शिकार व्यक्तियों को आत्म निर्भर बनाना एवं अभिभावकों की मदद से इनके हितों की रक्षा करना है। दिव्यांगजनों की विविध समस्याओं से प्रभावी ढंग से निपटने, उनके संवर्धन, संरक्षण एवं कल्याण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर अनेक उच्च स्तरीय संस्थानों की स्थापना की गई है।

निष्कर्ष एवं समाधान : सैद्धांतिक रूप से समाज में सभी मनुष्यों को समान अधिकार प्राप्त हैं, परंतु दिव्यांगों के संदर्भ में व्यावहारिक स्थिति इतनी सहज नहीं हैं। दिव्यांगजन अतीत से ही अनेक तरह की सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक निर्योग्यताओं एवं समस्याओं का सामना करती आ रही हैं और यह भी सच है कि समय-समय पर सरकार द्वारा इनके संरक्षण, संवर्धन एवं कल्याण हेतु अनेक प्रावधान किए हैं। वर्तमान वैश्विकरण एवं आधुनिकता के इस दौर में उक्त प्रावधान न काफी साबित हो रहे हैं। समाज में कहीं-न-कहीं आज भी दिव्यांगों के प्रति आमजन की मानसिकता में उतना परिवर्तन नहीं आया है, जितनी अपेक्षा की गई थी। जिस तरह से समाचार-पत्रों एवं सोशल मीडिया में इनके प्रति घटनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, उनसे यही प्रतीत होता है कि इनके सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक तथा शिक्षा संबंधी और सुधार की आवश्यकता है।

किसी भी समूह अथवा वर्ग के सामाजिक विकास की प्रक्रिया में जनशिक्षा, जागृति और उचित धारणा सर्वाधिक आवश्यक है और इसके लिए मीडिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका

हो सकती है। अधिकांश स्थितियों में दिव्यांगों को अपने अधिकारों एवं उनके कल्याण हेतु गतिमान योजनाओं के बारे में कोई जानकारी नहीं होती है और ऐसे में मीडिया की प्रमुख जिम्मेदारी बनती है कि वह दिव्यांगों से संबंधित योजनाओं, तकनीकी, उनके लिए निर्धारित सुख-सुविधाओं एवं विभिन्न प्रावधानों की सही और पर्याप्त सूचनाएँ आदि दिव्यांगों अथवा उनके अभिभावकों, परिजनों आदि को ससमय उपलब्ध कराए। समाज में दिव्यांगों को लेकर अकसर नकारात्मक धारणा देखी जाती है, ऐसे में मीडिया समाज में सकारात्मक धारणा विकसिक करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जहाँ त्वरित गति से सूचनाओं का आदान-प्रदान करता है, वहीं वह लोगों को जोड़ने का कार्य भी करता है, इसी कारण से मीडिया का निष्पक्षता से कार्य करना अति आवश्यक हो गया है। साथ ही मानवीय नजरिए में बदलाव की भी महती आवश्यकता है।

❑

संदर्भ

1. अधिकार संरक्षण जागृति संवर्धन : वार्षिक रिपोर्ट, 2020-21, पृ. 5
2. अधिकार संरक्षण जागृति संवर्धन : वार्षिक रिपोर्ट, 2020-21, पृ. 7
3. भसीन, अनीश, 'जानिए मानव अधिकारों को' ग्रंथ अकादमी, दरियागंज, दिल्ली, 2018, पृ. 13
4. वही, पृ. 14
5. भसीन, अनीश, 'जानिए मानव अधिकारों को' ग्रंथ अकादमी, दरियागंज, दिल्ली, 2018, पृ. 15
6. https://wecapable.com/types-of-disabilities-list/ dt. 27.04.2023
7. https://sje.rajasthan.gov.in/sap_rules_act_2016_n_21_types_disabilities.pdf dt. 27.04.2023
8. https://disabilityaffairs.gov.in/upload/5bd2a340bc20eAnnual%20Report%202017-18%20(H).pdf dt. 27.04.2023

डॉ. अशोक कुमार अवस्थी

विवाहेतर संबंधों से उत्पन्न बच्चों के मानव अधिकार

कुछ समय पूर्व एक प्रख्यात राजनैतिक नेता के विरुद्ध एक युवक ने दिल्ली हाई कोर्ट में याचिका दायर की थी और यह दावा करते हुए कि वह उनका पुत्र है, संबंध के प्रमाणीकरण हेतु डी.एन.ए. जाँच की माँग की थी। याचिका में उसने संपत्ति, विरासत या गुजारे भत्ते में किसी हिस्सेदारी की माँग नहीं की थी। उसका कहना था कि वह केवल उस व्यक्ति द्वारा यह स्वीकारोक्ति चाहता है जो उसके जन्म दिन की पार्टियों में शामिल होता था तथा उसके साथ खेलता था जब वह बच्चा था। यह अपने किस्म का पहला और रोचक मुकदमा था जिसमें एक युवक अपने जैविक पिता के नाम से अपने को जोड़ना चाहता था। तथाकथित पिता ने निजता के अधिकार का हवाला देते हुए पितृत्व हेतु डी.एन.ए. परीक्षण से उन्मुक्ति की माँग की लेकिन उच्चतम न्यायालय ने **नारायण दत्त तिवारी बनाम रोहित शेखर** (2012) 12 एस सी सी 554 के निर्णय में इस युवक के नाम, प्रतिष्ठा तथा गरिमा के मौलिक अधिकार को प्रश्रय दिया। प्रकरण का सुखद अंत माता-पिता के विवाह संपन्न होने से हुआ लेकिन इस केस ने विवाहेतर संबंधों से उत्पन्न हुए बच्चे के गरिमा के मानव अधिकार को रेखांकित ही नहीं किया, एक विशेष बल भी प्रदान किया।

इससे पूर्व 9 जुलाई1997 को उच्चतम न्यायालय ने **गौरव जैन बनाम भारत संघ** के जनहित वाद में सेक्स वर्कर्स के बच्चों की शिक्षा तथा पुनर्वास के लिए आदेश पारित किए थे और इस बात पर जोर दिया था कि ऐसे बच्चों के लिए अलग विद्यालय नहीं बल्कि जन-सामान्य के लिए चल रहे विद्यालय में ही शिक्षा व्यवस्था सुनिश्चित की जानी चाहिए। न्यायालय का कहना था कि बच्चे देश का भविष्य हैं तथा उनके बीच में किसी भेदभाव की गुंजाइश नहीं है।

विवाहेतर संबंधों से उत्पन्न बच्चों के वर्ग बढ़ते ही जा रहे हैं। पहले यह युद्ध की विभीषिका से ग्रसित स्त्रियों तक सीमित थे, फिर बलात्कार शामिल हुआ। इधर हाल के वर्षों में सरोगेसी तथा लिव-इन रिश्तों में उत्पन्न बच्चों के सरनेम, स्कूल में एडमिशन तथा विरासत के प्रश्न रेखांकित हो रहे हैं तो ऐसे भी प्रकरण प्रकाश में आ रहे हैं जिसमें पासपोर्ट, मुआवजा तथा पुनर्वास के प्रश्न अंतर्निहित हैं।

इसी कड़ी में 2013 में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत केस बहुचर्चित हुआ जिसमें एक

अविवाहित महिला ने अपने बच्चे का पासपोर्ट बनवाने के लिए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। जब इस महिला ने अपने बच्चे के पासपोर्ट के लिए आवेदन किया तो संबंधित अधिकारी ने उसका आवेदन यह कहते हुए निरस्त कर दिया कि उसमें पिता का नाम नहीं अंकित था। दिल्ली उच्च न्यायालय ने भी याचिका नामंजूर कर दी लेकिन उच्चतम न्यायालय ने अपील में यह निर्धारित किया कि पासपोर्ट की लिए जैविक पिता के नाम की अपरिहार्यता नहीं है। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 25(2)के अनुसार प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह विवाहिता से जन्मा हो या अविवाहिता से, समान संरक्षण प्राप्त है। स्वच्छंदता और अवैध संबंधों की निंदा करना तथा उसे हतोत्साहित किया जाना चाहिए लेकिन उस बच्चे के लिए यह नैतिक या औचित्य पूर्ण नहीं है क्योंकि प्रजनन में उसका कोई दोष नहीं है।

अनब्याही माँ द्वारा अपनी संतति को माता का संरक्षकत्व प्राप्त कराने हेतु उच्चतम न्यायालय द्वारा 6 जुलाई 2015 को निर्णीत वाद, **ए.बी.सी.बनाम राज्य(दिल्ली)** (सिविल अपील संख्या 5003/2015), ऐसे मामलों में नजीर है। एक ईसाई महिला ने स्वयं को संरक्षक घोषित करने के लिए वाद संस्थित किया था। उच्च न्यायालय सहित निचली अदालतों ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी क्योंकि संरक्षक तथा पाल्य अधिनियम में पिता ही संरक्षक हो सकता है जब कि महिला उस पुरुष का नाम उजागर नहीं करना चाहती थी। जस्टिस विक्रम जीत सेन तथा जस्टिस अभय मनोहर सप्रे की खंड पीठ ने इंग्लैंड, अमेरिका, फिलीपींस, न्यूजीलैंड तथा आयरलैंड के तत्संबंधी कघनूनों का हवाला देते हुए अभिनिर्धारित किया था कि जन्म देने वाली माता अपने बच्चे की संरक्षक हो सकती है उसके लिए जैविक पिता के नाम पर जोर देना बच्चे के मानव अधिकार का हनन है।

युद्ध के अलावा अविवाहित माताओं की बड़ी संख्या बलात्कार पीड़िताओं की है। यों तो भारत सहित कई देशों में ऐसी स्त्रियों को गर्भपात अनुमत है लेकिन इसमें समय-सीमा आरोपित है क्योंकि मेडिकल साइंस के अनुसार एक तय समय के बाद गर्भपात माँ और शिशु दोनों के लिए जोखिम भरा हो सकता है। ऐसा ही एक पीड़ादायक प्रकरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ बेंच के समक्ष पीड़िता के पिता द्वारा प्रस्तुत किया गया। एक 13 साल की नाबालिग लड़की का रेप किया गया था जिससे वह गर्भवती हो गई। डर, शर्म और अज्ञान के कारण लड़की ने घटना की जानकारी किसी से साझा नहीं की। जब उसके दर्द होना प्रारंभ हुआ और डाक्टरी परीक्षण हुआ तब तक देर हो चुकी थी और गर्भपात कराना संभव नहीं था। अंततः शिशु का जन्म हुआ लेकिन उसको स्वयं जननी माता या उसके नाना-नानी बच्चे को रखने को राजी नहीं थे जिसने रेप किया था वह जेल के सीखचों के पीछे था।

ए.(पीड़िता के पिता के द्वारा) बनाम उ.प्र. राज्य के वाद में 3 नवंबर, 2015 को निर्णय देते जस्टिस शबीहुल हसनैन तथा जस्टिस डी.के. उपाध्याय ने बच्चे को सरकारी ख़र्च से परवरिश का आदेश दिया, मुआवजे की धनराशि का फिक्स्ड डिपाजिट् बनवाया तथा यह भी आदेश दिया कि बालिग होने पर वह पिता की संपत्ति में हिस्सेदार होगी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह निर्णय

सही प्रतीत होता है लेकिन समझदार होने पर यह शिशु इस पर कितना सहमत होगा, यह वक्त ही बतलायेगा।

युद्ध और बलात्कार में स्त्रियों के गर्भधारण और अनचाहे बच्चों के प्रति रोष लेकिन सहानुभूति होती है लेकिन आज की सिविल सोसाइटी में लिव-इन रिश्तों से पैदा होने वाले बच्चे एक नई समस्या बन कर उभर रहे हैं। इन रिश्तों में स्त्री-पुरुष के जोड़े एक ही छत के नीचे रहते हैं लेकिन विवाह जैसी प्रतिबद्धता नहीं होती। भारत में लिव-इन रिश्ता यदि सामाजिक मान्यताप्राप्त नहीं है तो क़ानूनी रूप से प्रतिबंधित भी नहीं है। इसमें कब संबंधित स्त्री-पुरुष अलग हो जाएँ, ये उनको भी पता नहीं रहता। लेकिन यदि इस बीच स्त्री गर्भवती हो जाए या माँ बन जाए तो वैधानिकता, कस्टडी, सरनेम, संरक्षकत्व, भरण-पोषण तथा उत्तराधिकार आदि के प्रश्न खड़े हो जाते हैं। यहाँ फ्रांस का दृष्टांत समीचीन है। स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा साथ रहता था और वे विवाह की तैयारी कर रहे थे। इस बीच लड़की गर्भवती हो गई। उन लोगों ने चर्च जाकर अनुमति भी ले ली थी। लेकिन एक दुर्घटना में पुरुष साथी की मौत हो गई। स्त्री ने उस बच्चे को जन्म दिया तथा उसे पाल पोस रही थी। वह बच्चा अपने हमउम्र बच्चों के बीच अलग-थलग पड़ जाता था क्योंकि सभी उसे लांछित नज़रों से देखते थे। मगाली जैसकिविच नाम की इस महिला ने अदालत की शरण ली तथा अपने दिवंगत साथी जोनाथन जॉर्ज से विवाह की अनुमति माँगी। अदालत ने कब्र से उस व्यक्ति का सैंपल निकलवाकर डी.एन.ए. परीक्षण कराया तथा संतुष्ट होने पर विवाह की रस्म पूरी कराई।

अनचाहे तथा अवैध गर्भ से मुक्ति पाने/दिलाने के भी कई दिलचस्प किस्से हैं। **सुचित्रा श्रीवास्तव बनाम चंडीगढ़ प्रशासन** (सिविल अपील 25854/2009) में एक ग़ैर-सरकारी संगठन ने उच्च न्यायालय में याचिका के द्वारा माँग की कि एक मानसिक रूप से अपंग स्त्री के साथ बलात्कार हुआ है तथा वह गर्भवती है। वह शारीरिक/मानसिक या आर्थिक रूप से सक्षम नहीं है कि वह शिशु की परवरिश कर सके। उच्च न्यायालय ने उसका गर्भ पात कराने की अनुमति दे दी लेकिन मामला उच्चतम न्यायालय पहुँचा जहाँ उसके संज्ञान में लाया गया कि वह विक्षिप्त स्त्री गर्भपात नहीं कराना चाहती है। उच्च न्यायालय के फ़ैसले को उलटते हुए शीर्ष न्यायालय ने निर्धारित किया कि एक मानसिक रूप से विकलांग स्त्री की इच्छा के विरुद्ध गर्भपात की अनुमति देना उसके मानव अधिकारों का उल्लंघन है।

सरोगेसी अर्थात् किराए की कोख से उत्पन्न बच्चों के साथ भी ऐसी घटनाएँ प्रकाश में आई हैं जहाँ यश, कीर्ति, भरण-पोषण, कस्टडी आदि-आदि के साथ नागरिकता के पहलुओं पर विवाद हो। यहाँ उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत एक वाद के तथ्य उल्लेखनीय हैं। दरअसल एक जापानी दम्पति ने एक भारतीय महिला से सरोगेसी का अनुबंध किया तथा स्वयं के स्पर्म तथा एग के द्वारा उसका गर्भाधान कराया। महिला अपना समय पूरा कर रही थी कि दंपति में अलगाव हो गया। जापान में सरोगेसी प्रतिबन्धित है। शिशु का जन्म हो गया तथा उसका जैविक पिता उसे अपनाने को इच्छुक भी था लेकिन क़ानून आड़े आ रहा था। अंततः उच्चतम

न्यायालय ने **बेबी माँजी यमदा बनाम भारत संघ** में 29 सितंबर, 2008 को निर्णय देते हुए शिशु को जापानी नागरिक मानते हुए उसे उसकी दादी को सौंपने के आदेश पारित किए। इस प्रकरण से भारत में सरोगेसी के औचित्य-अनौचित्य पर बहस प्रारंभ हुई और इन सरोकारों से संबंधित क़ानून पारित हुआ।

उपरोक्त कुछ दृष्टांत हैं जो न्यायालय की दहलीज पर गए और समाचार-पत्रों की सुर्ख़ियाँ बने। समाचार-पत्रों में अक्सर नाली या झाड़ियों में परित्यक्त नवजात शिशुओं के मिलने के समाचार पढ़ने को मिलते हैं। यह बच्चे अवैध संबंधों तथा अनचाहे गर्भ धारण के होते हैं जिन्हें भाग्य भरोसे छोड़ दिया जाता है। इनमें से कुछ शिशुओं की मौत हो जाती है और कुछेक भाग्यशाली बच जाते हैं। इनमें कइयों को गोद ले लिया जाता है लेकिन बलात्कार आदि से उत्पन्न बच्चों की जानकारी होने पर उनका पुनर्वास आसान नहीं होता। मध्ययुगीन यूरोप, इंग्लैंड और अमेरिका में एक नाजायज़ बच्चे के भरण-पोषण का अधिकार रहा है लेकिन विरासत का नहीं। भारत में भी ऐसे जातकों को अत्यंत सीमित अधिकार हैं। महाभारत में कर्ण एक चरित्र है जो कुन्ती के विवाह से पूर्व सूर्य से उत्पन्न कहा जाता है। वह पांडवों में सबसे बड़ा होने के बावजूद वह स्थान न पा सका हालाँकि वह महाभारत के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारियों में से एक था। उसकी वास्तविक पहचान उसकी मृत्यु तक अज्ञात रही। बहुत से लोगों का यह भी मानना है कि कर्ण को कभी भी वह सब नहीं मिला जिसका वह वास्तविक अधिकारी था क्योंकि वह विवाहेतर संबंधों से उत्पन्न था।

चूँकि किसी बच्चे की वैधता को माता-पिता के संबंध के प्रकार से आंका जाता है अतः विवाह संस्था से इतर पैदा हुए बच्चे को 'नाज़ायज़', 'अवैध' या 'नालियस फिलियस' (हरामी) की संज्ञा दी जाती है। यहाँ यह याद रखना अनिवार्य है कि स्त्री-पुरुष के संबंध की परवाह किए बिना बच्चा हमेशा निर्दोष होता है। बच्चा अपनी सामाजिक आलोचना और अपमान के लिए अति संवेदनशील है। यह भेदभाव है कि बच्चे को सहना होगा क्योंकि एक नाज़ायज़ बच्चे के नाम, संपत्ति, विरासत आदि अधिकारों को नियंत्रित करने वाले नियम स्वीय विधियों (पर्सनल क़ानूनों) पर आधारित होते हैं। उच्चतम न्यायालय ने नियमित रूप से माता-पिता के बीच संबंध को ध्यान में रखा है एवं स्वीय विधियों का निर्वचन करते हुए सांविधानिक दर्शन, नैतिकता और मूल्यों को सर्वोपरि रखते हुए बच्चे के सर्वोत्तम हितों के साथ एक सुसंगत दृष्टिकोण बनाए रखने का प्रयास किया है।

❑

डॉ. पुष्पांजली पांडेय

महिला मानव अधिकारों के सबलीकरण में संयुक्त राष्ट्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सारांश : महिलाएँ विश्व की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं लेकिन फिर भी वे हमेशा पुरुष प्रधान समाज में दोयम दर्ज़े पर रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ नें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महिला मुक्ति एवं महिला सशक्तिकरण हेतु किए गए प्रयासों को अधिक मजबूती प्रदान की है। संघ नें अपनी स्थापना के साथ ही महिला मानव अधिकारों के संरक्षण की दिशा में महत्त्वपूर्ण क़दम उठाए। विशेष रूप से महिला मानव अधिकारों के उत्थान हेतु किए गए विभिन्न समझौतों एवं इकरारनामों में महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर समझौता, विवाहित महिला की राष्ट्रीयता पर समझौता, विवाह की सहमति, विवाह की न्यूनतम आयु एवं विवाह के पंजीकरण पर समझौता तथा महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभावपरक नीतियों व कार्यों को समाप्त करने संबंधी कन्वेंशन इत्यादि को शामिल किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध के अंतर्गत इसी संदर्भ में विवरणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी स्थापना के पश्चात् किस प्रकार महिला मानव अधिकारों को सुनिश्चित करने में अपना योगदान दिया है तथा वैश्विक स्तर पर महिलाओं को प्रत्येक क्षेत्र में अधिकार प्रदान करने एवं इन अधिकारों की अभिवृद्धि एवं संरक्षण के माध्यम से महिलाओं को पुरुषों के सम-स्तर लाने की दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा क्या प्रयास किए जा रहे हैं?

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य महिला मानव अधिकारों की रक्षा एवं संवर्द्धन हेतु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किए गए प्रयासों की कड़ी में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा समय-समय पर महिलाओं से संबंधित अभिसमयों, संधि-समझौतों एवं व्यवस्थाओं को ज्ञात करना है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध हेतु द्वितीयक तथ्यों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक तथ्यों के संकलन हेतु पुस्तकों, शोध-पत्रिकाओं, संपादित ग्रंथों एवं इंटरनेट का प्रयोग किया गया है। शोध की पद्धति मूलतः वर्णनात्मक है जिसमें सहायक पद्धतियों के रूप में ऐतिहासिक पद्धति, सामग्री विश्लेषण, पुस्तकालयी अध्ययन पद्धति इत्यादि का उपयोग किया गया है।

अपने स्थापना काल से ही संयुक्त राष्ट्र संघ में महिला मानव अधिकार का विचार अस्तित्ववान हो गया था। महिलाओं के लिए समानता का मुद्दा 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना और 1946 में महिलाओं की स्थिति के बारे में आयोग के गठन के समय से ही संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियों का मुख्य विषय रहा है। चार्टर की प्रस्तावना में, संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों द्वारा मौलिक मानव अधिकार, मानव की गरिमा एवं मूल्य तथा सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों एवं महिला-पुरुषों के समान अधिकार में विश्वास व्यक्त किया गया। अरुण चतुर्वेदी के अनुसार, ''संयुक्त राष्ट्र आरंभ से ही महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए प्रतिबद्ध है। चार्टर के अनुच्छेद 1, 8, 13 (प) इ, ए, 55 (ब), 62 (2) और दूसरे अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार प्रपत्र इसी दिशा में प्रयत्नशील है।''

1945 में जब चार्टर को व्यावहारिक रूप दिया गया एवं संयुक्त राष्ट्र संघ की औपचारिक रूप से स्थापना की गई तब से संयुक्त राष्ट्र संघ महिलाओं के अधिकारों के लिए विश्व स्तर पर आंदोलन चलाने वाला प्रमुख केंद्र बन गया है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महिला मानव अधिकारों को विकसित करने एवं स्थापित करने में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा समय-समय पर जारी किए गए अभिसमयों व घोषणाओं के अतिरिक्त धरातलीय स्तर पर विकसित किए गए संस्थानात्मक तंत्रों के माध्यम से भी प्रयासरत् है :

1. अभिसमय तथा घोषणाएँ

महिलाओं के अधिकारों से संबंधित अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों एवं संधियों द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ ने समाज में पुरुष व महिलाओं के बीच में समानता के विकास में सहायता की है समझौते या अंतरराष्ट्रीय संधियाँ या अभिसमय जो संयुक्त राष्ट्र द्वारा किए गए हैं उन्हें उन राष्ट्रों द्वारा पालन करना अनिवार्य है जिन्होंने इन संधियों या समझौतों को अपनी मान्यता प्रदान की है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा समय-समय पर किए गए अभिसमय व घोषणाएँ इस प्रकार हैं --

महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर अभिसमय (1952) : संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 20 दिसंबर, 1952 को 'महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर अभिसमय' हस्ताक्षर एवं पुष्टिकरण के लिए प्रस्तुत किया गया। यह अभिसमय 7 जुलाई, 1954 को क्रियान्वित हुआ। भारत ने इस अभिसमय पर 29 अप्रैल, 1953 को हस्ताक्षर किए तथा 1 नवंबर, 1961 को इसकी पुष्टि की गई।

इस अभिसमय के माध्यम से सदस्य राष्ट्रों द्वारा महिलाओं को बिना किसी भेदभाव के पुरुषों के समान चुनाव में वोट देने, राष्ट्रीय क़ानून द्वारा स्थापित सरकारी संरचनाओं का चुनाव लड़ने तथा राष्ट्रीय क़ानून द्वारा स्थापित सरकारी दफ़्तरों एवं सरकारी कार्यों में भागीदारी का अधिकार दिया गया।

विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता से संबंधित अभिसमय (1957) : संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा न्यूयार्क में 26 जनवरी, 1957 में विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता से संबंधित अभिसमय

हस्ताक्षर एवं पुष्टिकरण के लिए प्रस्तुत किया गया। यह अभिसमय 11 अगस्त, 1958 से क्रियान्वित हुआ तथा भारत ने 15 मई, 1957 को इस अभिसमय पर हस्ताक्षर किए।

इसके अंतर्गत विवाह के पश्चात् भी पत्नी को अपनी नागरिकता बनाए रखने का अधिकार दिया गया है। साथ ही कहा गया है कि किसी विदेशी से विवाह करने पर पत्नी की नागरिकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, न तो वह राज्यविहीन होगी और न ही उस पर अपने पति की राष्ट्रीयता आरोपित की जाएगी।

विवाह की सहमति, विवाह की न्यूनतम आयु एवं विवाह के पंजीकरण पर अभिसमय (1962) : महिलाओं के प्रति बाल विवाह जैसी कुरीतियों का निराकरण करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 7 नवंबर, 1962 को विवाह की सहमति, विवाह की न्यूनतम आयु एवं विवाह के पंजीकरण से संबंधित अभिसमय हस्ताक्षर एवं पुष्टिकरण के लिए प्रस्तुत किया गया। इस अभिसमय का क्रियान्वयन 9 दिसंबर, 1964 को हुआ।

यह समझौता राज्य पक्षकारों को विवाह की न्यूनतम आयु निश्चित करने का आह्वान करता है। यह बाध्य करता है कि सक्षम सत्ता द्वारा प्रदान किए गए गंभीर कारणों जो कि पति या पत्नी के हित में हो, को छोड़कर न्यूनतम आयु से नीचे किए गए विवाह क़ानूनी रूप से मान्य नहीं होंगे। साथ ही यह समझौता राज्य पक्षकारों को सभी विवाहों को एक उचित कार्यालयी रजिस्टर में पंजीकरण करने हेतु बाध्य करता है।

महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभावों की समाप्ति की घोषणा (1967) : मूलभूत मानव अधिकारों, मानवीय गरिमा, मनुष्य के गुणों एवं स्त्री पुरुष के समान अधिकारों में विश्वास अभिव्यक्त करते हुए 7 दिसंबर, 1967 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति की घोषणा की गई। इस घोषणा-पत्र के द्वारा महिलाओं के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव को अन्याय एवं मानवीय गरिमा के प्रति अपराध घोषित करते हुए उन सभी परंपराओं, क़ानूनों, नियमों एवं व्यवहारों को समाप्त करने की घोषणा की गई जो महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण है। साथ ही महिलाओं व पुरुषों के अधिकारों को समान क़ानूनी संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से समानता के सिद्धांतों को सदस्य देशों के संविधान में सम्मिलित करने की अपेक्षा की गई।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 10 दिसंबर, 1948 को एक प्रस्ताव पारित कर मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा-पत्र स्वीकार किया है। इस सार्वभौमिक घोषणा के कुल 30 अनुच्छेदों में सम्पूर्ण मानव अधिकारों को समाहित किया गया है जिसमें नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के साथ ही आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों को भी शामिल किया गया है। इसके पहले व दूसरे अनुच्छेद में समानता के अधिकार को समाहित किया गया है।

अनुच्छेद 3 से 21 तक में विभिन्न नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को सम्मिलित किया

गया है। अनुच्छेद 22 से 27 में विभिन्न आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को शामिल किया गया है तथा 28 से 30 तक की धाराओं में सामाजिक और अंतरराष्ट्रीय अधिकारों को सम्मिलित किया गया है। मानव अधिकारों की इस सार्वभौम घोषणा के द्वारा मनुष्यों के अहरणीय अधिकारों को जारी किया गया और पुरुषों के साथ महिलाओं को भी ये सभी अधिकार प्रदान किए गए।

आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की घोषणा (1966) : 16 दिसंबर, 1966 की आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की घोषणा द्वारा महिलाओं के पक्ष में रोज़गार, समान कार्य के लिए समान वेतन, सामाजिक सुरक्षा तथा निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित किया गया है।

नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों की घोषणा (1966) : 16 दिसंबर, 1966 की नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों की घोषणा के अंतर्गत भी महिलाओं के लिए जीवन का प्राकृतिक अधिकार, यातना के अमानवीय व्यवहार से संरक्षण व निजत्व के संरक्षण अधिकार को प्रदत्त किया जाना विधिक व्यवस्था का एक अंग घोषित किया गया।

महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त करने संबंधी अभिसमय (1979) (CEDAW) : महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभावों को समाप्त करने के उद्देश्य से 18 दिसंबर, 1979 को इस आशय का अभिसमय संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा प्रस्तुत किया गया। यह 3 सितंबर, 1981 से क्रियान्वित हुआ।

समझौते को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देशों द्वारा महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव रोकने के लिए निम्नलिखित प्रतिबद्धता जाहिर की गई है।

1. अपनी वैधानिक व्यवस्था में पुरुष एवं महिलाओं के बीच समानता के सिद्धांत का समावेश करना तथा उन सभी क़ानूनों को समाप्त करना जो महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव का समर्थन करते हैं।
2. महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव की समाप्ति के लिए न्यायाधिकरण तथा अन्य लोक संस्थाओं की स्थापना।
3. व्यक्ति, संगठन तथा उद्यमों द्वारा महिलाओं के विरुद्ध किए जाने वाले भेदभाव की समाप्ति।

इस अभिसमय में उन सभी उपायों का समावेश किया गया जिनके द्वारा महिलाओं के विरुद्ध राजनीतिक एवं सार्वजनिक जीवन, शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य, विवाह एवं परिवार में भेदभाव को मिटाया जाएगा।

2. महिला मानव अधिकारों के संदर्भ में किए गए विश्व सम्मेलन

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 1975 को अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया गया तथा इसके उपलक्ष्य में महिलाओं पर प्रथम विश्व सम्मेलन मैक्सिको में आयोजित किया गया। इसके पश्चात्, तीन और विश्व सम्मेलन कोपनहेगन (1980), नैरोबी (1985) तथा बीजिंग

(1995) में किए गए। इन्हें इस प्रकार देखा जा सकता है।

प्रथम विश्व महिला सम्मेलन, 1975 (मैक्सिको सम्मेलन) : प्रथम अंतरराष्ट्रीय विश्व महिला सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र संघ का महिला कल्याण के लिए प्रथम प्रयास था जो मैक्सिको सिटी में वर्ष 1975 में 19 जून से 2 जुलाई के बीच किया गया।

प्रथम अंतरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन में अनेक देशों के सरकारी प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा वर्ष 1976 को अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष और 1975-85 के दशक को अंतरराष्ट्रीय महिला दशक घोषित किया गया एवं महिलाओं के कल्याण के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना बनाई गई। इस सम्मेलन में स्त्री शिक्षा, महिलाओं के लिए रोज़गार के अवसर बढ़ाने, लिंग-आधारित भेदभाव मिटाने, नीति निर्धारण में महिलाओं को शामिल करने, समान राजनीतिक, सामाजिक एवं नागरिक अधिकार देने आदि के लिए घोषणाएँ की गई, साथ ही संचार व सूचना के प्रचार माध्यमों द्वारा स्त्री की बदलती और विस्तृत होती भूमिका को सकारात्मक रूप से प्रयुक्त किए जाने पर बल दिया गया।

द्वितीय विश्व महिला सम्मेलन, 1980 (कोपेनहेगन सम्मेलन) : प्रथम अंतरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन में बनाई गई प्रथम पंचवर्षीय योजना के मूल्यांकन के लिए तथा अगली पाँच वर्षों की योजना बनाने के लिए कोपेनहेगन में वर्ष 1980 में 14 जुलाई से 31 जुलाई तक द्वितीय विश्व महिला सम्मेलन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में महिलाओं के लिए तीन उप-विषय 'शिक्षा', 'नियोजन' एवं 'स्वास्थ्य' जोड़े गए। मैक्सिको में घोषित उद्देश्य कोपेनहेगन के लिए सार्थक माने गए और शेष दशक के कार्यान्वयन कार्यक्रम का आधार भी बने। महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए पारिवारिक, स्थानीय, राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय, सभी स्तरों पर महिलाओं व पुरुषों दोनों में महिलाओं की भूमिकाओं से संबंधित दृष्टिकोण में परिवर्तन की बात कही गई।

तृतीय विश्व सम्मेलन, 1985 (नैरोबी सम्मेलन) : नैरोबी में वर्ष 1985 में 15 जुलाई से 26 जुलाई के बीच हुए तृतीय विश्व महिला सम्मेलन में महिलाओं को आगे बढ़ाने के लिए प्रतिनिधि मंडलों ने 'नैरोबी, प्रगतिशील रणनीतियाँ' नामक दस्तावेज़ का प्रतिपादन किया। इस दस्तावेज़ में वर्ष 2000 तक महिलाओं की प्रगति के क्षेत्र में काम किए जाने की गतिविधियों व रणनीतियों का ढाँचा तैयार किया गया।

नैरोबी तृतीय विश्व सम्मेलन में महिलाओं के विकास एवं कल्याण हेतु निर्धारित उद्देश्य निम्न थे --

1. महिलाओं की सामाजिक एवं राजनैतिक स्तर पर पुरुषों के समकक्ष समान स्तर पर सहभागिता के लिए सभी सदस्य राष्ट्रों की सरकारो को अपने-अपने देशों में संवैधानिक व क़ानूनी आधारों पर समानता के प्रावधानों को लागू करने के निर्देश दिए गए।
2. क़ानूनी सुधारों के अंतर्गत महिलाओं को प्रसूति अवकाश की सुविधा, अपनी पसंद का विवाह एवं तलाक देने के अधिकारों को देने की बात की गई।
3. महिलाओं में अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, पारिवारिक अधिकारों के प्रति

जागरूकता पैदा की जाए तथा विकासशील देशों की महिलाओं को भी विकसित देशों की महिलाओं के उन्नत जीवन स्तर तक लाने के प्रयास किए जाए।

4. लड़कियों को लड़कों के समान शैक्षणिकता के स्तर पर लाने हेतु सुविधाएँ दी जाएँ तथा रूढ़िबद्ध लिंग आधारित पाठ्यचर्या का उन्मूलन किया जाए।
5. महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित व सुदृढ़ करने के लिए उन्हें प्रशिक्षित व प्रोत्साहित किया जाना चाहिए एवं महिलाओं द्वारा कृषि कार्य एवं अर्थ व्यवस्था में दिए गए योगदान को मान्यता दी जानी चाहिए।
6. विज्ञान व प्रौद्योगिकी तथा अनुसंधान के लिए व बाह्य अंतरिक्ष के सभी शांतिपूर्ण कार्यों में सरकार द्वारा महिलाओं को सम्मानित किया जाना चाहिए।

चतुर्थ महिला सम्मेलन, 1995 (बीजिंग सम्मेलन)

बीजिंग में 4 से 15 सितंबर तक आयोजित चतुर्थ विश्व महिला सम्मेलन के मुख्य उद्देश्य थे --

1. प्रतिनिधि मंडलों की प्रगतिशील रणनीतियों की उपलब्धियों का पुनरावलोकन करना।
2. समाज में ऐसी स्थिति पैदा करना जिससे महिलाओं को आगे बढ़ने का प्रोत्साहन मिले।
3. 21वीं सदी की वैज्ञानिक, तकनीकी, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास संबंधी चुनौतियों और ज़रूरतों का सामना करने के लिए साधन उपलब्ध कराना।
4. महिलाओं को समर्थ बनाने के लिए योजनाएँ बनाना।
5. ऐसी कार्य योजना की रूपरेखा बनाना जिससे 'नैरोबी की प्रगतिशील रणनीतियों' को लागू किया जा सके।

इस चतुर्थ विश्व सम्मेलन में 189 सरकारों के प्रतिनिधियों ने बीजिंग घोषणा और कार्य मंच का अनुमोदन किया जिसका उद्देश्य सार्वजनिक एवं निजी जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं के विकास में आने वाली बाधाएँ समाप्त करना है।

3. संस्थानात्मक तंत्र

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विभिन्न संस्थानात्मक तंत्र विकसित किए गए जिसके परिणामस्वरूप महिला अधिकारिता एवं महिला विकास के लिए विभिन्न अभिकरणों की स्थापना की गई जो अपने क्षेत्र में इस आशय के कार्य कर रहे हैं --

यूनिसेफ : 1946 में युद्धोपरांत बच्चों को राहत देने के लिए स्थापित की गई संस्था यूनिसेफ विकासशील देशों में बच्चों एवं महिलाओं के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए सहायता पहुँचाती है। यह संस्था युद्ध, हिंसा और शोषण की शिकार स्त्रियों एवं बच्चों की पीड़ा घटाने के लिए शिक्षा, सलाह-मशविरा और देखभाल उपलब्ध कराने वाली विशेष परियोजनाओं को समर्थन देती है।

कई देशों में लड़कियों को भेदभाव का सामना करना पड़ता है जिससे उनका जीवन और क्षेम ख़तरे में पड़ जाते हैं। यूनिसेफ इन लड़कियों के जीवन और क्षेम के अधिकार की प्राप्ति के लिए तथा उनकी क्षमताओं को गौण बनाने वाले विश्वासों और व्यवहारों में परिवर्तन के

लिए कार्य करता है। यूनिसेफ लड़कियों को उनके अधिकारों से वंचित रखने वाले भेदभाव और रीति-रिवाजों की समाप्ति में सहायता देने के लिए वचनबद्ध है।

महिलाओं की प्रस्थिति संबंधी आयोग : 1946 में संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् द्वारा 'महिलाओं की प्रस्थिति पर एक आयोग' की स्थापना की गई। यह आयोग विश्व में पुरुष एवं महिलाओं के बीच समानता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्थापित किया गया है। पुरुष एवं महिलाओं के बीच समानता की माप का विश्व स्तर पर क्या पैमाना होना चाहिए इसकी स्थापना इस महिला प्रस्थिति आयोग का मुख्य उद्देश्य है। यह आयोग महिलाओं की समस्याओं को संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न एजेंसियों के सामने लाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

इस आयोग की गतिविधियों में महिलाओं के अधिकारों की परिभाषा से लेकर महिलाओं को इन अधिकारों से वंचित रखने वाले पहलुओं का पता लगाना शामिल है। इस आयोग ने महिलाओं की उन्नति के लिए अंतरराष्ट्रीय दिशा-निर्देश और क़ानून बनाए हैं।

महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव उन्मूलन समिति : महिलाओं के विरुद्ध होने वाले भेदभाव को दूर करने के उद्देश्य से 1982 में एक समिति की स्थापना की गई जिसका मुख्य उद्देश्य 1979 में महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव को समाप्त करने के लिए किए गए समझौते की शर्तों को लागू करवाना है। समिति की बैठक में समिति द्वारा 1979 के समझौतों की शर्तों के क्रियान्वयन के बारे में रिपोर्ट की जाँच की जाती है तथा इस संबंध में हुई प्रगति का मूल्यांकन भी किया जाता है। यह समिति सदस्य राष्ट्रों को महिलाओं के विरुद्ध हो रहे भेदभाव को समाप्त करने की सिफ़ारिश भी करती है तथा उपाय भी सुझा सकती है। यह महासभा को अपनी वार्षिक रिपोर्ट देती है तथा इन रिपोर्टों को महिला समिति आयोग को सूचना के लिए भेजती है।

महिलाओं के निमित्त संयुक्त राष्ट्र विकास निधि (UNIFEM) : यह एक स्वैच्छिक निधि है जो महिलाओं के मानव अधिकारों उनके आर्थिक तथा राजनैतिक सबलीकरण और लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करने वाले नए ढंग के कार्यक्रमों को समर्थन एवं तकनीकी सहायता देती है। यूनीफेम तीन मुख्य क्षेत्रों में कार्य करता है --

1. उद्यमियों तथा उत्पादकों के रूप में महिलाओं की आर्थिक क्षमता को मजबूत करना।
2. शासन, नेतृत्व और निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना।
3. विकास को अधिक समानतापूर्ण बनाने के लिए महिला मानव अधिकारों को बढ़ावा देना।

यूनीफेम 100 से अधिक देशों में महिलाओं को अपने और अपने परिवार के जीवन की गुणवत्ता को उन्नत बनाने के लिए सहायता दे रहा है। यह महिलाओं को लाभ पहुँचाने वाले नवाचारित कार्यक्रमों को सहायता व समर्थन देता है तथा महिलाओं की पहलों को प्रत्यक्ष तकनीकी व आर्थिक सहायता देता है। 1976 में यूनिफेम की स्थापना संयुक्त राष्ट्र के महासभा द्वारा महिलाओं के विकास कोष के लिए की गई और 1985 में इस कोष को यू.एन.डी.पी. (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम) के साथ संयुक्त कर इसका नाम यूनिफेम कर दिया गया जिसे स्वायत्तता

प्रदान कर दी गई --

स्त्रियों की प्रगति के निमित्त अंतरराष्ट्रीय शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान : इसकी स्थापना महासभा द्वारा 1976 में प्रथम महिला सम्मेलन की सिफ़ारिश पर की गई। यह संयुक्त राष्ट्र के तहत एक स्वायत्त निकाय है जिसका मुख्य कार्य पूरे विश्व में रिसर्च, प्रशिक्षण तथा सूचना संबंधी गतिविधियाँ करना है जिससे महिलाओं को विकास का प्रमुख अभिकर्त्ता बनाया जा सके। यह रिसर्च एवं प्रशिक्षण संस्था इस बात का रिसर्च द्वारा पता लगाती है कि सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विकास की प्रक्रिया में महिलाओं की समानता में कौन-सी चीज बाधक बन रही है। इसका उद्देश्य महिलाओं की प्रगति में योगदान के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नीति शोध एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना और चलाना विकास प्रक्रिया में उनकी सक्रिय तथा समान भागीदारी को बढ़ावा, लैंगिक विषयों पर जागृति पैदा करना तथा लैंगिक समानता की उपलब्धि के लिए समूचे विश्व में जाल बिछाना है।

महासभा ने इसकी नई कार्य पद्धति के रूप में लैंगिक जागरूकता सूचना तथा नेटवर्किंग प्रणाली (Gender Awareness Information and Networking System-GAINS) की स्थापना की। गेंस के माध्यम से यह नई सूचना प्रौद्योगिकियों का अग्रलिखित कार्यों के लिए उपयोग करता है --

1. लैंगिक समानता को प्राप्त करने के सरोकार के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों पर ध्यान देने के लिए इलेक्ट्रॉनिक पद्धति से सहयोगात्मक शोध का संचालन।
2. सभी स्तरों पर महिलाओं के जीवन को समुन्नत बनाने के लिए नीति निर्माण के निमित्त लैंगिकता संबंधी ज्ञान एवं सूचना की प्रस्तुति, प्रबंधन एवं वितरण।
3. दूरस्थ शिक्षा और 'ऑन-लाइन' प्रशिक्षण का इस्तेमाल करते हुए ई-ट्रेनिंग और क्षमता निर्माण उपायों के जरिये महिलाओं के सबलीकरण के एक व्यावहारिक तंत्र की प्रस्तुति।

महिलाओं का विकास विभाग (Divison for Development of Women) : महिलाओं का विकास विभाग महिलाओं के ऊपर हो रहे सम्मेलनों के सचिवालय के रूप में कार्य करता है। यह विभाग नीतियों पर शोध करता है। यह देखता है कि सम्मेलन में महिलाओं के ऊपर लिए गए निर्णय ठीक तरह से कार्यान्वित हो रहे हैं अथवा नहीं।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण के अंतर्गत महिला मानव अधिकार तथा उनके संरक्षण के संबंध में उठाए गए कदमों पर सिलसिलेवार दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के अस्तित्व में आने के पश्चात् से इस दिशा में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महत्त्वपूर्ण क़दम उठाए गए हैं। इसके द्वारा महिलाओं के अधिकारों तथा समाज में पुरुष एवं महिलाओं के बीच समानता के विकास को मापने का एक पैमाना स्थापित करने में मदद की गई है। संयुक्त राष्ट्र संघ विभिन्न योजनाओं, सम्मेलनों एवं एजेंसियों के माध्यम से महिला मानव अधिकारों के संवर्द्धन के प्रयास में लगा हुआ है। महिला

मानव अधिकार व लैंगिक समानता के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र द्वारा किए गए प्रयास मील का पत्थर साबित हुए हैं। इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों की संविधियों में महिला मानव अधिकारों को स्थान देते हुए महिलाओं के लिए विशेष व्यवस्थाएँ भी की गई है।

❑

संदर्भ

1. सिंह एम.के. एवं कुमार आशुतोष, संयुक्त राष्ट्र संघ, नई दिल्ली कल्पना पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2003, पृ. 140
2. चतुर्वेदी अरुण एवं लोढा संजय, भारत में मानव अधिकार, जयपुर, पंचशील प्रकाशन, 2005, पृ. 57
3. पलई अरुण कुमार, भारत का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग गठन, कार्य और भावी परिदृश्य, नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन, 1999, पृ. 182
4. श्रीवास्तव वी.पी. हयूमन राइट्स इश्यूसेज एंड इम्प्लीमेंटेशन, भाग-1, दिल्ली, इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूर्टस, 2004, पृ. 431
5. महावर सुनील, राज्य एवं महिला मानव अधिकार, जयपुर, पोइंटर पब्लिशर्स, नोट-4, पृ. 75
6. गौतम रमेश प्रसाद, मानव अधिकार : विविध आयाम, सागर, मध्य प्रदेश, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2003, पृ 46
7. मेजर कन्वेंशन ऑन वुमेन, http://www.ecswa.org.lb/divisions/ecw.asp
8. चतुर्वेदी सतीश, मानव अधिकार और संयुक्त राष्ट्र संघ, जयपुर, पोईन्टर पब्लिशर्स, 2002, पृ. 90-92
9. दीक्षित सोना/दीक्षित अरुण कुमार, महिलाओं के मानव अधिकारों का संरक्षण, कुरूक्षेत्र, कुरुक्षेत्र प्रकाशन, मार्च, 2005 पृ. 11
10. लॉसन एडवर्ड, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ह्यूमन राइट्स, नई दिल्ली, टायलर एंड फ्रांसिस, नई दिल्ली, पृ. 1600
11. कांत मीरा, महिला दशक और हिंदी पत्रकारिता, नई दिल्ली, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, 1994, पृ. 26
12. कौशिक, आशा, मानव अधिकार और राज्य : बदलते संदर्भ उभरते आयाम, जयपुर, पोईन्टर पब्लिशर्स, 2004, पृ. 23
13. संयुक्त राष्ट्र के संबंध में बुनियादी तथ्य, संयुक्त राष्ट्र संघ सूचना केंद्र द्वारा अनूदित एवं प्रकाशित, 2001, पृ. 206

आचार्य डॉ. मधु सूदन राजपुरोहित

क्या हिंसा हँसता परिणाम दे सकती है?

ईश्वर ने सृष्टि का सृजन करते समय उसके सुगम संचालन हेतु कुछ नियम भी बनाए जिसे हम नैसर्गिक अथवा प्राकृतिक विधि के नाम से पुकारते हैं। ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति 'मानव' को कहा जाता है। इस कारण से मानव से ईश्वरीय/प्राकृतिक विधि की पालना की सर्वाधिक अपेक्षा की जानी चाहिए लेकिन वस्तुतः मानव ही इसका सर्वकालिक एवं सर्वाधिक उपेक्षक रहा है।

सृष्टि के सभी प्राणी, सिवाय मानव के, ईश्वर प्रदत्त नियमों का पालन करते हुए निर्बाध एवं विकार रहित जीवन जी रहे हैं। परंतु इससे उलट मानव ने अपना व दूसरों का जीवन दुभर कर दिया है। इसी कारण से मानव को मानव के अधिकारों व दायित्वों के सृजन का कार्य करना पड़ा जिसके सुचारू संचालन के लिए मानव को अनथक प्रयास करने पड़ रहे हैं।

मानव के इसी स्वभाव ने मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ उसके सुगम संचालन के लिए उनके मनीषियों ने प्राकृतिक विधि के सिद्धांतों को अक्षुण्ण रखते हुए अपनी विधियाँ विकसित कीं, ताकि मानव-समाज में शांति व्यवस्था कायम रह सके।

1940 में 'अटलांटिक' नामक युद्ध-पोत पर श्री विन्सटन चर्चिल एवं श्री फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट मिले। इन्होंने सिद्धांतों का एक बयान तैयार किया जो इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा साझा किया गया था। यह 'अटलांटिक चार्टर' के नाम से जाना जाता है। 6 जनवरी, 1941 को रूज़वेल्ट के भाषण में इन सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था --

भविष्य के दिनों में, जिसे हम सुरक्षित बनाना चाहते हैं, हम चार स्वतंत्रताओं पर आधारित एक विश्व की आशा करते हैं --

पहला, दुनिया में हर जगह वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो।

दूसरा, हर व्यक्ति को दुनिया में हर जगह अपने तरीके से ईश्वर की पूजा करने की स्वतंत्रता।

तीसरा, अभाव से मुक्ति (स्वतंत्रता)।

चौथा, भय से मुक्ति (स्वतंत्रता)।''[2]

इलैन पेगल्स ने कहा था, ''संसदीय लोकतंत्र या मार्क्सवादी सिद्धांत के विचारों की तरह, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विचारों या नस्लीय समानता के विचारों की तरह, मानव अधिकारों

का विचार गति प्राप्त कर रहा है और तेजी से विश्व भर में राजनीतिक प्राथमिकताओं का स्वामी बनता जा रहा है।''[3]

भारत अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त होने के पश्चात् स्वतंत्र भारत के नव निर्माण एवं भारतीय समाज के सुचारू संचालन हेतु तत्समयी मनीषियों द्वारा गठित संविधान सभा ने 2 वर्ष, 11 माह एवं 18 दिन के अनथक भीम-परिश्रम द्वारा भारत के लोगों को एक सर्वोत्कृष्ट संहिता, जिसे विश्व की श्रेष्ठतम् प्रारूपिक कृति में शुमार किया जाता है, उपलब्ध कराई। इस अद्वितीय कृति को हम भारत के लोग 'भारत का संविधान' के नाम से पुकारते हैं। इसी संविधान के माध्यम से हम स्वतंत्र भारत के लोगों ने 'भारत' को एक संप्रभु, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाया। हमने इसके सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक न्याय; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था एवं पूजा की स्वतंत्रता; प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता; प्रदान करते हुए तथा सभी में बन्धुत्व की भावना को प्रोत्साहित करते हुए व्यक्ति की गरिमा एवं देश की एकता व अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने हेतु आश्वस्त किया।

संविधान के भाग 3 में भारत के नागरिकों को विभिन्न प्रकार के मूल अधिकार प्रदान किए गए हैं; जिनमें समता, स्वतंत्रता, शोषण मुक्ति, धार्मिक स्वतंत्रता, शिक्षा एवं संस्कृति, उपचार से जुड़े अधिकार मुख्य हैं। ये सभी अधिकार किसी-न-किसी रूप से ईश्वर-प्रदत्त व्यवस्था से मेल खाते हुए होने से हमारी लगभग हर कठिनाइयों से लड़ने में सक्षम शस्त्र साबित हुए हैं एवं भारत के हर व्यक्ति को अपनी मर्जी से जीने की गारंटी प्रदान करते हैं।

संविधान केवल अधिकारों की बात नहीं करता वरन् वह कर्त्तव्यों की भी चर्चा करता है। भारत लोगों से संविधान के भाग 4-क में वर्णित 11 कर्त्तव्यों के पालन की भी अपेक्षा करता है। भारत एक प्रजातांत्रिक देश है एवं संविधान इसकी सर्वोच्च विधि है। किसी भी प्रजातांत्रिक सरकार की सफलता के लिए विधि का शासन होना सर्वाधिक आवश्यक है। विधि-शासन ही प्रजातांत्रिक-व्यवस्था में अद्‌भुत जान डालता है एवं उसे सार्थक बनाता है।

200 वर्षों की गुलामी से मुक्ति के बाद विश्व की सर्व-व्यवस्थाओं में से श्रेष्ठ व्यवस्था को चुनने के पश्चात् मात्र 75 वर्ष में ही यदि हम इसके ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करने में अपनी ऊर्जा लगाना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझने लग जाएँ तो शायद हमारे स्वतंत्रता-सेनानी पूर्वजों की आत्माएँ कभी तुष्ट नहीं हो सकेंगी यह निश्चित है। हाल ही में राजस्थान में विभिन्न जातियों, गुर्जरों व किसानों द्वारा चलाया जाने वाले आंदोलन को हम प्रत्यक्ष उदाहरण के तौर पर ले सकते हैं।

भारत के सभी नागरिकों को सभी मूल एवं संवैधानिक अधिकार उपलब्ध हैं। किसी वर्ग विशेष के नागरिकों द्वारा अपनाया गया तरीका यदि दूसरे सभी नागरिकों को उनके अधिकारों से वंचित करता है तो वह मार्ग कभी भी संवैधानिक एवं उचित नहीं हो सकता। प्रजातंत्र में आंदोलन करना मना नहीं है; लेकिन उसके करने का विधि-भंग-माध्यम क़तई स्वीकार्य नहीं हो सकता। यदि हम गहनता से अध्ययन करें तो प्रजातंत्र एवं समानता की क़ीमत पर आरक्षण किसी भी कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

प्रकृति किसी भी वस्तु अथवा सुविधा के लिए किसी प्रकार का न तो आरक्षण रखती है और न ही देती है। वह सभी के साथ समान व्यवहार करती है। मानव ने जब-जब उससे दो-दो हाथ करने का प्रयास किया, किसी-न-किसी असंतुलन पैदा करने की वजह से हर बार विपदा के भँवर में ही फँसा है।

संविधान में स्वयं में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन-जाति को तय करने के कोई मापदण्ड़ नहीं दिए गए हैं एवं इस कारण से किसी भी जाति या जन-जाति को अनुसूची में सम्मिलित करने का आधार बाद में तय किया जाकर उसे पिछले दरवाज़े से संवैधानिक दर्ज़ा दिया जाना संविधान में बिना उचित प्रक्रिया अपनाए संशोधन किए जाने के समान है। चूँकि संविधान में संशोधन उसके मूल ढाँचे के विपरीत किसी भी सूरत में अर्थात् किसी भी प्रक्रिया द्वारा नहीं किया जा सकता। अतः उपर्युक्त प्रकार का संशोधन तो विधि के किसी भी नियमों में अनुमत्य नहीं हो सकता। इस कसौटी पर यदि देखें तो अभी तक जितने भी आरक्षण संबंधी परिपत्र (नोटिफिकेशन) जारी हुए हैं सभी की संवैधानिकता परखे जाने की आवश्यकता है।

आरक्षण दिए जाने से किसी का उत्थान हो सकता है; यह सोच किसी भी दृष्टि से उचित प्रतीत नहीं होती। पिछले 75 वर्षो के दौरान दिए गए आरक्षण का लाभ अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन-जाति के कुछ परिवारों को छोड़कर, कितनें प्रतिशत परिवारों को हुआ है, यदि हम सांख्यिकी तलाशें तो हमें निराशा ही हाथ लगेगी। फिर और उसे आगे तक जारी रखने का कुछ लाभ होगा, यह संदेहास्पद है। मुझे याद है, जब मैं छोटा था, गाँव में लोग यह कहा करते थे कि चींटियों अथवा मकोड़ों से निज़ात पानी हो तो उनकी बांबियों को सींचना (अर्थात् उनके मूल-स्रोत स्थान पर उन्हें दाना/चुग्गा डालना) शुरू कर दें एवं कुछ समय पश्चात् उसे बंद कर दिया जाए तो वे सभी उनके बांबी-स्थान से दूर भोजन की तलाश में न जाकर उस सहज सुलभ दाने की आस में स्वतः ही भूखीं मर जाएँगी।

मुझे यही परिणति आरक्षण पाई जातियों की लगती है। जब मैं इसके परिणाम की सोचता हूँ तो मन उनके और अधिक पराभव की कल्पना में काँप उठता है। ऐसी स्थिति में हम उन्हें आरक्षण देकर उनके उत्थान में सहायक न होकर, उनके स्वालंबी बनने के पथ की तरफ बढ़ने से उन्हें वंचित करने में अपरोक्ष रूप से सहायक बन रहे हैं।

समाज के सुचारू संचालन के लिए हमें अवश्य ही पिछड़े वर्ग के उन्नयन के लिए सोचना चाहिए, जैसे उनको हर तरह की सुविधाएँ मुहैया कराई जानी चाहिए जो उनके शैक्षणिक एवं सामाजिक उन्नयन के लिए आवश्यक हो। लेकिन सीधा आरक्षण देकर उन्हें विकसित होने के परिश्रम से वंचित किए जाने का संदेश देना उन्हें उपनी स्थिति से पतन में ही सहायक होगा न कि उनके उन्नयन में।

यदि तर्क के लिए आरक्षण को उचित भी मान लिया जाए एवं आंदोलन भी आवश्यक हो, तब भी उस आंदोलन का हिंसक, हठधर्मी एवं असंवैधानिक रूप किसी भी व्यवस्था में स्वीकार्य नहीं हो सकता। जहाँ तक आंदोलन की सफलता का प्रश्न है; उसके लिए हिंसा, तोड़-फोड़,

आगज़नी एवं सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुँचाए जाने का माध्यम उसे सफलता की गारण्टी नहीं दे सकता। जबकि अहिंसा का मार्ग अवश्य ही सफलता की राह आसान एवं निश्चित करता है। उदाहरणतः अंग्रेजों के आतताई शासन से मुक्ति के लिए महात्मा गाँधी द्वारा संचालित अहिंसक अहिंसात्मक आंदोलन, एवं नेल्सन मण्ड़ेला द्वारा चलाए गए अहिंसात्मक आंदोलन ही भारत एवं दक्षिण अफ्रीका की स्वतंत्रता के मुख्य कारक साबित हुए न कि हिंसात्मक आंदोलन। हिंसा चाहे शासक द्वारा हो अथवा रियाया द्वारा दोनों ही गलत होने से त्याज्य हैं।[4] भगवान विष्णु के दशावतारों में से नौवाँ अवतार भगवान बुद्ध अहिंसा के अवतार माने जाते हैं, जिनके पथ पर चल कर हिंसक सम्राट अशोक अहिंसा अपना कर अशोक महान बन गया।

विदेशी शासक के विरुद्ध तो फिर भी यदि तर्क को खींचें तो शायद कुछ हद तक हम हर तरह के आंदोलन को उचित भी ठहरा सकते हैं। लेकिन अपने ही शासन के विरुद्ध अपना ही नुकसान करके अपना फायदा सोचना उस मूढ़ कालिदास की याद दिलाता है जो उसी डाल को काट रहा था जिस पर वह स्वयं बैठा था। मुझे लगता है कि शायद, इन सब के लिए हमारे राजनेताओं एवं राजनैतिक पार्टियों के व्यक्तिगत स्वार्थ एवं तुष्टिकरण की नीतियाँ भी कुछ हद तक जिम्मेदार हैं। पूर्व में जाटों को उनके आंदोलन के बाद अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) में आरक्षण का लाभ मिलने से अन्य जातियों को भी उग्र आंदोलन के लिए उत्प्रेरित करने में यही मार्ग उचित प्रतीत होने लगा है।

यदि सभी जातियाँ इसी प्रकार से आंदोलन पर उतर आती हैं तो संविधान की मूल भावना, भाईचारे, समानता आदि के भाव; जो हम 75 वर्षो में जगा पाए हैं वह तिरोहित होने में कुछ वक्त नहीं लगेगा एवं हम सब शायद पुनः प्रस्तर-युगीन मानव में जल्द ही तब्दील हो जाएँगे। यह बात समझने की है कि जब समस्या बातचीत से हल हो सकती है और इतनी हिंसा एवं तोड़-फोड़ के बाद भी बातचीत से ही हल किया जाना स्पष्ट है व स्पष्ट हो गया है तो फिर पहले ही यदि समय पर यही प्रक्रिया कर ली जाती तो हमें विकास की क़ीमत पर यह अनावश्यक आर्थिक बोझ तो न उठाना पड़ता।

हिंसा परिणाम तो देती ही है; और अपवादिक परिस्थितियों में शायद सफलता भी; परंतु उस सफलता पर हिंसा के हँसते जख़्मों की कसक उसे स्वयं हँसने नहीं देती। अतः हिंसा कभी भी हँसता परिणाम नहीं दे सकती। अंत में यही कहूँगा कि इस वैश्वीकरण के दौर में भारत को यदि वैश्विक महाशक्ति बनाना है तो हम सभी भारत के लोगों को अपनी ऊर्जा इन तुच्छ मुद्दों एवं उनके लिए हिंसक, विप्लवकारी मार्ग में न लगाकर शांति-व्यवस्था एवं नैतिक उन्नयन में लगाते हुए आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक उन्नति में सहायक बनना होगा ताकि भारत अपनी युवा शक्ति के बल पर विश्व में एक समर्थ महाशक्ति के रूप में उभर कर अपना पूर्व का विश्व-गुरू का आसन पुनः अर्जित कर सके।

संदर्भ के लिए पृ. 199 पर देखें

❑

डॉ. शीतल प्रसाद मीना

जलवायु परिवर्तन : 21वीं सदी में मानव अधिकारों के लिए सबसे बड़ा ख़तरा

अब यह संदेह से परे है कि ग्लोबल वार्मिंग के कारण हो रहा जलवायु परिवर्तन अंतरराष्ट्रीय कानून के तहत प्राप्त और संरक्षित अनेक मानव अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण समुद्र के बढ़ते स्तर, बढ़ते तापमान, चरम मौसम और वर्षा के बदलते पैटर्न के कारण लोगों के भोजन, पानी, स्वास्थ्य, आश्रय, विकास और जीवन के अधिकार बुरी तरह से प्रभावित हो रहे हैं। बच्चों के लिए, जलवायु परिवर्तन के ख़तरे विशेष रूप से स्पष्ट हैं। यूनिसेफ ने इस बात पर जोर दिया है कि कैसे यह बढ़ता वैश्विक संकट दुनिया भर के बच्चों के लिए सबसे बड़े खतरों में से एक बहुत बड़ा ख़तरा साबित हो रहा है, जिससे बाल अस्तित्व और विकास में हुए कई लाभ कम हो गए हैं।

ग्लोबल वार्मिंग के कारण अमीर देश और गरीब देश बुरी तरह प्रभावित हो रहें हैं। हाल में यूरोप में बढ़ती गर्मी ने लोगों को बुरी तरह बेहाल कर दिया। विश्व में कभी किसी देश में और कभी किसी देश में अतिवृष्टि के कारण अप्रत्याशित बाढ़ आ जाती है जिससे कई लोग बाढ़ में बह जाते हैं और घरों में पानी घुस कर तबाही मचाता है। बढ़ती गर्मी के साथ जंगलों का विस्तृत क्षेत्र जल उठता है, स्पष्ट है जंगलों के सहारे जीवन जीने वाले, विशेषतया ग़रीब लोग बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं। पर्यावरणीय परिणामों में तापमान में वृद्धि, कुछ क्षेत्रों में अत्यधिक वर्षा और अन्य में सूखा, चरम मौसम की घटनाएँ और समुद्र के स्तर में वृद्धि से कृषि उत्पादन, सुरक्षित पानी तक पहुँच और श्रमिक उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और भूमि को जलमग्न करके या भूमि को रहने के लिए अनुपयोगी बनाकर, कई लोगों को पर्यावरणीय शरणार्थी बनने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले प्रतिकूल स्वास्थ्य प्रभावों में गर्मी से संबंधित विकार, खाद्यजनित और जलजनित रोग, श्वसन और एलर्जी संबंधी विकार, कुपोषण, सामूहिक हिंसा और मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ शामिल हैं।

ग्लोबल वार्मिंग से हो रहे जलवायु परिवर्तन के कारण नागरिक और राजनीतिक अधिकारों और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को भी ख़तरा पैदा हो गया है जिनमें जीवन के अधिकार, सुरक्षित भोजन और पानी तक पहुँच, स्वास्थ्य, सुरक्षा, आश्रय और संस्कृति शामिल

हैं। राष्ट्रीय या स्थानीय स्तर पर, वे लोग जो जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल पर्यावरणीय और स्वास्थ्य परिणामों के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील हैं, उनमें ग़रीब लोग, अल्पसंख्यक समूहों के सदस्य, महिलाएँ, बच्चे, वृद्ध लोग, पुरानी बीमारियों और विकलांगता वाले लोग प्रभावित क्षेत्रों में रहने वाले लोग शामिल हैं।

बाढ़ और भयंकर गर्मी के कारण कई प्रकार की बीमारियों के कारण आम-जन और श्रमिक बहुत प्रभावित होते हैं। मौसम के प्रतिकूल अधिक गर्मी के कारण श्रमिक की कार्य क्षमता प्रभावित होती है जिसके कारण प्रायः उनका स्वास्थ्य प्रभावित होता है और कई बार उन्हें रोज़गार से भी हाथ धोना पड़ता है और कुछ मामलों में तो श्रमिकों की असमय मृत्यु भी हो जाती है। ग्लोबल वार्मिंग से प्रभावित हो रहे अनियमित और अनियंत्रित जलवायु से आने वाला समय और अधिक भयावह होता दिखाई दे रहा है। अतिवृष्टि से कई स्थानों पर प्रलय जैसी स्थिति पैदा हो जाती है। आजकल भारत में मौनसून ऋतु चल रही है और प्रायः पूरे देश में एक समान वर्षा नहीं होती। परंतु आजकल जिस तरह देश के कई भागों में अतिवृष्टि के कारण या बादल फटने आदि की घटनाएँ हो रही हैं वह वस्तुतः ग्लोबल वार्मिंग के कारण ही है जबकि भारत का पर्यावरण में गैस उत्सर्जन विकसित देशों की तुलना में कम है परंतु ग्लोबल वार्मिंग समान रुप से विश्व के देशों को प्रभावित कर रहा है।

ग्लोबल वार्मिंग के लिए उत्तरदायी गैस उत्सर्जन का वैश्विक स्तर पर बहुत अधिक असमानता है, कम आय वाले देश, जो सबसे कम ग्रीन हाउस गैसों (जीएचजी) का उत्सर्जन करते हैं, उच्च आय वाले देशों की तुलना में जलवायु परिवर्तन से अधिक प्रतिकूल रूप से प्रभावित होते हैं। जो देश काफी अधिक मात्रा में जीएचजी का उत्पादन करते हैं फिर भी कम प्रभावित होते हैं क्योंकि वहाँ की व्यवस्थाएँ मजबूत होती हैं और वहाँ भी अगर कोई प्रभावित होता है तो ग़रीब लोग ही होते हैं। इसके अलावा, कम आय वाले देशों में उच्च आय वाले देशों की तुलना में जलवायु परिवर्तन को विपरीत प्रभाव को सहन करने की क्षमता बहुत कम होती है।

ग्लोबल वार्मिंग मुख्य रूप से मानव प्रेरक कारकों के कारण होता है। औद्योगीकरण में ग्रीन हाउस गैसों का अनियंत्रित उत्सर्जन तथा जीवाश्म ईंधन का जलना ग्लोबल वार्मिंग का मुख्य कारण है।इस संबंध में उल्लेखनीय बात यह है कि विकसित देश अपने यहाँ विकास के कारण बहुत अधिक ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन करते हैं जिसका विपरीत प्रभाव विकासशील और कम विकासशील देशों पर अधिक पड़ता है और इस कारण वहां की जनता के मानव अधिकार प्रभावित होते रहते हैं।

ग्लोबल वार्मिंग पर नियंत्रण के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ अपनी तरफ से कई प्रकार के प्रयास करता रहा है। इस संबंध में इस पर नियंत्रण की दिशा में विश्व का प्राथमिक अंतरराष्ट्रीय समझौता है क्योटो प्रोटोकॉल (Kyoto Protocol, 1997 तथा बाद में आया पेरिस समझौता जिसमें गैस उत्सर्जन के कुछ लक्ष्य निर्धारित किए गए थे और बाद में अमरीका ने स्वयं को

उससे अलग भी कर लिया था। भारत आरंभ से ही इस बात पर ज़ोर देता रहा है कि वातावरण में अधिक गैस उत्सर्जन के लिए विकसित देशों को उन देशों को वित्तीय सहायता देना चाहिए जहाँ जलवायु परिवर्तन के कारण वहाँ के लोगों के मानव अधिकार प्रभावित होते हैं। अब जब कि विकसित देश भी कमोबेश रूप से ग्लोबल वार्मिंग से प्रभावित होना शुरू हो गए हैं तो आशा की जानी चाहिए कि वह भी इस जरूरी और ख़तरनाक समस्या पर गंभीरता से विचार करना शुरू करेंगे।

वैसे, संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि यदि सभी देशों द्वारा कार्बन उत्सर्जन में कटौती के लक्ष्यों को पूरा कर लिया जाता है तो भी, वैश्विक तापमान वृद्धि को 2 डिग्री सेल्सियस के अंदर रखने के लक्ष्य को पूरा करना संभव नहीं होगा। उत्सर्जन कटौती कम करने का एक मात्र जरिया देशों का राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान ही है। अतः वैश्विक बाध्यकारी नियमों के बिना उत्सर्जन में कटौती एक दुष्कर कार्य होगा।

भारत ग्लोबल वार्मिंग समस्या से जूझ भी रहा है और वैश्विक फलक पर भी इसे गंभीरता से उठाता रहा है। साथ ही, भारत में गैस उत्सर्जन में अपनी तरफ से कमी लाने के लिए सक्रिय हैं। भारत में सोलर ऊर्जा आदि वैकल्पिक उपायों को अपनाया जा रहा है। इसी तरह, अन्य अनेक उपाय भी किए जा रहे हैं। परंतु जब तक विकसित देश इस दिशा में कुछ सार्थक पहल नहीं करेंगे, समस्या का संपूर्ण समाधान संभव नहीं होगा और मानव अधिकारों को ले कर बड़ी बड़ी बातें करने वाले मानव अधिकार को सुरक्षित नहीं कर पाएँगे।

भारत जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने के लिए अपने उचित हिस्से से अधिक काम कर रहा है। भारत ने जलवायु परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय अनुकूलन कोष (एनएएफसीसी) की स्थापना भारत के उन राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों (यूटी) में अनुकूलन गतिविधियों का समर्थन करने के लिए की है जो जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों के प्रति संवेदनशील हैं। एनएएफसीसी को परियोजना मोड में कार्यान्वित किया गया है और अब तक 27 राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में 30 परियोजनाएँ स्वीकृत की गई हैं।

घरेलू स्तर पर जलवायु परिवर्तन को दृढ़ता से संबोधित करने के अलावा, भारत ने इंटरनेशनल सोलर एलायंस (आईएसए) और कोएलिशन फॉर डिजास्टर रेजिलिएंट इंफ्रास्ट्रक्चर (सीडीआरआई) जैसे अंतरराष्ट्रीय गठबंधन भी लॉन्च किए हैं। नवंबर 2021 में ग्लासगो में COP 26 में, CDRI और ISA के तहत नई पहल, यानी इंफ्रास्ट्रक्चर फॉर रेजिलिएंट आइलैंड स्टेट्स (IRIS) और ग्रीन ग्रिड इनिशिएटिव-वन सन वन वर्ल्ड वन ग्रिड (GGI&OSOWOG) भी लॉन्च की गईं। स्वीडन के साथ, भारत स्वैच्छिक निम्न कार्बन संक्रमण के लिए लीडरशिप ग्रुप फॉर इंडस्ट्री ट्रांजिशन (लीडआईटी) का सह-नेतृत्व करता है।

इसके अलावा, भारत के राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एनडीएमए) ने चक्रवात, बाढ़ और गर्मी की लहर जैसी चरम मौसम संबंधी आपदाओं के प्रबंधन के लिए कई आपदा विशिष्ट दिशा-निर्देश जारी किए हैं। जलवायु परिवर्तन से संबंधित ख़तरों सहित विभिन्न ख़तरों के आपदा

जोखिम प्रबंधन में राज्य सरकारों सहित सभी हितधारकों की सहायता के लिए राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन योजना (एनडीएमपी) तैयार की गई है। इसके अलावा, बाढ़/चक्रवात की स्थिति में समय पर निकासी की सुविधा और जीवन के नुकसान को रोकने के लिए भारतीय मौसम विभाग द्वारा अग्रिम और प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली लागू की जा रही है। भारत सरकार ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव से निपटने के लिए अपने स्तर पर सतर्कता से सक्रिय हैं।

❑

संदर्भ

1. संयुक्त राष्ट्र संघ के समाचार एवं भारत सरकार के प्रतिवेदन तथा भारत के समाचार पत्रों के सौजन्य से।

रमेश चंद्र

संविधान और सामाजिक न्याय एवं मानव अधिकार

'सामाजिक न्याय' वह अवधारणा होती है जो देश के हर नागरिक और हर समाज के लिए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक विकास, समृद्धि, जीवन-यापन आदि के समान अवसर और समान सुविधाओं की उपलब्धता को केंद्रीय बिंदू बनाते हुए उसे अपना मूलाधार बनाती है। सामाजिक न्याय किसी भी देश की स्थिरता के लिए बहुत आवश्यक होता है। सामाजिक न्याय के सहारे देश के लोग संतुष्टि महसूस करते हैं और शांति से रह सकते हैं। जिस प्रकार परिवार में हर व्यक्ति के लिए न्याय और समानता का ध्यान रखना जरूरी होता है, उसी प्रकार देश भी एक परिवार है और देश के हर व्यक्ति के लिए भी न्याय और समानता का ध्यान रखना बहुत जरूरी होता है। सामाजिक न्याय समाज, परिवार और देश के सभी क्षेत्रों, सभी वर्गों, सभी समाजों और सभी व्यक्तियों के संतुलित विकास का हेतुक होता है। सामाजिक न्याय की अनुपस्थिति में परिवार, समाज या देश में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और उनके खंड-खंड होने का भी जोखिम रहता है। इस प्रकार सामाजिक न्याय देश की अखंडता और उसमें समरसता के लिए अपरिहार्य तत्त्व होता है।

परतंत्र भारत में सामाजिक न्याय नाम की कोई अवधारणा नहीं थी, क्योंकि विदेशी शासक किसी समाज को कुछ लाभ देकर और दूसरे को न देकर उनके लिए ईर्ष्या का कारण उत्पन्न कर देते थे, जिससे वे स्वयं लाभान्वित होते थे। परंतु स्वतंत्र भारत में ऐसा नहीं है। वह इसलिए कि यह देश हमारा है, इसके संसाधन हम सबके हैं और इसके लोग हमारे अपने भाई-बहन हैं। अंग्रेजों की तरह अब इसका शासक कोई और नहीं, बल्कि हम स्वयं हैं। इसलिए देश के सब लोगों के समन्वित और संतुलित विकास के लिए देश की स्वतंत्रता के बाद संविधान में ही सामाजिक न्याय की अवधारणा को अपनाया गया। इस संविधान के वास्तुक विधि के क्षेत्र के महान विद्वान डॉ. भीमराव अंबेडकर थे। भारत की संविधान सभा ने उन्हें संविधान का प्रारूप बनाने वाली समिति का अध्यक्ष बनाया था। उनकी अध्यक्षता में संविधान प्रारूपण समिति ने इस कार्य को इतनी जिम्मेदारीपूर्ण निभाया कि इसका प्रारूप बनाने से पहले उन्होंने संसार के 8 प्रमुख देशों के संविधानों का अध्ययन किया और उनकी अच्छी-अच्छी बातों का भारत के संविधान के प्रारूप में शामिल किया। इन अच्छी बातों में सामाजिक न्याय भी एक है।

वास्तव में सामाजिक न्याय भारत के संविधान की आधारशिला है। इसके लिए भारत के

संविधान की उद्देशिका पर दृष्टिपात करते हैं --

''हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्वश-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को -- सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्क्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़-संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

भारत के संविधान की यह उद्देशिका इसके अधिनियम के पीछे उद्देश्यों की एक झलक है। कोई भी विद्वान व्यक्ति जो इस उद्देशिका के मर्म को जानता है, यह जानता है कि भारत का संविधान मात्र कागजों का पुलिंदा नहीं है, बल्कि सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को साकार करने का एक सायास विधान है जिसके एक-एक शब्द से सामाजिक न्याय का उद्देश्य झलकता है। सामाजिक न्याय की दिशा में देश को सर्वप्रथम समाजवादी रूप दिया गया है अर्थात् देश में सामाजिक न्याय को प्रथम स्थान दिया गया है। आगे, इसे पंथ-निरपेक्ष बनाकर हर धर्म के लिए विकास के समान अवसर उपलब्ध कराए गए हैं। इसके शासन का लोकतंत्रात्मक स्वरूप हर व्यक्ति को शासन करने और शासन प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार देता है। भारत का गणराज्य होना भी इसी ध्येय का सूचक है, जिससे तात्पर्य है देश का शासक कोई अकेला राजा नहीं होगा, बल्कि जनता के प्रतिनिधियों द्वारा चुना गया राष्ट्रपति होगा। उद्देशिका में देश के सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए संविधान को दृढ़-संकल्पी होकर अंगीकृत किया गया है और आत्मार्पित किया गया है अर्थात् स्वयं पर लागू किया गया है। इस प्रकार संविधान की संपूर्ण उद्देशिका सामाजिक न्याय पर टिकी हुई है और संविधान में उसी अनुसार उपबंध किए गए हैं।

उद्देशिका को सही अर्थों में क्रियान्वित करने और सबको समान अवसर देने के लिए इसके भाग 2 में देश में पैदा हुए हर बच्चे को देश की नागरिकता प्रदान की गई है, जिससे तात्पर्य है वह देश के अन्य लोगों की तरह समान सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विकास और अवसर की समानता का अधिकारी है। संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 14 से 32 तक समान मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं, जिनमें विधि के समक्ष समता धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग या जन्मे स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध, लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता, अस्पृश्यता और उपाधियों का अंत, वाक्-स्वतंत्रता, प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का

संरक्षण, शिक्षा का अधिकार, मानव के दुर्व्यापार और बालश्रम का प्रतिषेध, धर्म की स्वतंत्रता, अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण, संपदा का अर्जन, संवैधानिक उपचारों का अधिकार आदि शामिल हैं। इस प्रकार संविधान में हर धर्म, नस्ल, समाज, व्यक्ति के लिए हर प्रकार की स्वतंत्रता और समानता की व्यवस्था है। देश के नागरिकों को प्राप्त मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त संविधान में राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत भी यही सामाजिक समानता लाने की दिशा में प्रयास हैं।

संविधान में हर व्यक्ति को काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने, काम की न्यायसंगत दशाएँ प्राप्ति करने, नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता सुनिश्चित करने, अनुसूचित जातियों, जन-जातियों और दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि का भी उपबंध है।

राजनैतिक क्षेत्र में हर व्यक्ति को मत देने, चुनावों में उम्मीदवार के रूप में खड़े होने और किसी भी राजनैतिक पद पर आरूढ़ होने का समान अधिकार है। संविधान के अध्याय 2 में संसद के गठन की व्यवस्था है जिसके अनुसार लोक सभा के सदस्य वयस्क व्यक्तियों द्वारा चुने जाते हैं और अमीर-ग़रीब, हिंदू-मुस्लिम, छोटे-बड़े, शिक्षित-अशिक्षित सबके मत की कीमत बराबर होती है। राज्य सभा के सदस्यों को भी विधान सभाओं के लिए चुने गए उनके प्रतिनिधि ही चुनते हैं। नगरपालिकाओं, जिला परिषदों, पंचायत समितियों, ग्राम पंचायतों के गठन के पीछे भी सामाजिक समानता एक बहुत बड़ा कारक है।

संविधान में सामाजिक समानता संबंधी उपबंधों की रक्षा करने के लिए जिला स्तर से लेकर उच्चतम न्यायालय स्तर तक लंबी-चौड़ी न्याय प्रणाली भी है। इसके अतिरिक्त न्यायिक पुनरीक्षण का अधिकार भी सामाजिक समानता की अवधारणा को और अधिक बल देता है।

भाषा के क्षेत्र में भी समता लाने के लिए संविधान में देश की हर भाषा का विकास करने की व्यवस्था है। भाषाओं के समान रूप से विकास के बारे में संविधान के अनुच्छेद 351 में विशेष व्यवस्था है। साथ ही प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध कराने, व्यथाओं के निवारण के लिए अपनी मातृभाषा का प्रयोग करने तथा राज्यों की जनसंख्य के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध है। नौकरियों में नागरिकों को समान अवसर प्रदान करके सामाजिक समानता लाने के लिए भी संघ लोक सेवा आयोग, कर्मचारी चयन आयोग तथा राज्यों के कर्मचारी चयन बोर्डों का उपबंध किया गया है।

संविधान की इन सब व्यवस्थाओं को सुनिश्चित कराने के लिए लोक सभा, विधान सभाओं, सरकारी सेवाओं, शैक्षणिक पाठ्यक्रमों आदि में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़ा वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था पिछड़े लोगों को समान समाजिक स्तर पर लाने का प्रयास है। इन्हें सुनिश्चित करने तथा इनके हितों के संरक्षण के लिए अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग, अन्य, विछड़ा वर्ग आयोग बनाए गए हैं। इनके अतिरिक्त

अल्पसंख्यक वर्गों, सफाई कर्मचारियों, महिलाओं, बच्चों आदि को भी समान सामाजिक स्तर पर लाने के लिए अलग-अलग आयोग स्थापित किए गए हैं। साथ ही मानव अधिकारों की रक्षा के लिए मानव अधिकार आयोग अलग से गठित है। केंद्र और राज्य स्तर पर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय और विभाग भी गठित हैं।

इस प्रकार सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए संविधान में न केवल किसी विषय विशेष के बारे में उपबंध हैं, बल्कि धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, वैचारिक, अभिव्यक्तिगत, विश्वास और उपासना संबंधी समानता तथा प्रतिष्ठा, विकास, अवसर की समानता और व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करने संबंधी उपबंध भी हैं। कुल मिलाकर सामाजिक न्याय के क्षेत्र में भारत का संविधान एक आदर्श संविधान है तथा अन्य देशों के लिए भी अनुकरणीय है। देश के हर नागरिक को गर्व होना चाहिए कि वह भारत का नागरिक है। हम ऐसे संविधान की परिकल्पना करने वाले प्रबुद्ध न्यायविदों के आभारी हैं।

❑

पृ. 192 का शेष

संदर्भ

1. Lord Denning : "*What Next in Law*" (1982) p. 277.
   These principles were stated eloquently in speech by *Roosevelt* on 6th January, 1941
   "In the future's day's, which we seek to make secure, we look forward to a world founded upon four essential human freedoms :-
   The first is freedom of speech and expression everywhere in the world.
   The second is freedom of every person to worship God in his own way – everywhere in the world.
   The third is freedom from want.
   The fourth is freedom from fear."
2. Elaine Pagels : "*The Roots and Origin Of Human Rights*" in Alice H. Henkin (ed.), '*Human Dignity : The Internationalisation of Human Rights*', (1997), p. 8.
3. विधि अनुसार प्रक्रिया अपना कर अपराधी को विधि सम्मत दंड देना हिंसा की परिधि में नहीं आएगा।